उपवास

[प्रयोग और लाभ]

लेखिका

ज्योतिर्मयी ठाकुर

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज—प्रयाग

प्रथम संस्करण] १९५६ [मू० २)

भूमिका

रोगों से शरीर को मुक्त करने के लिए जितनी भी चिकित्सायें चल रही हैं, उनमें मैं प्राकृतिक चिकित्सा पर अधिक विश्वास करती हूँ। इस चिकित्सा ने अब बहुत बड़ी उन्नति कर ली है और इसके अध्ययन का क्षेत्र एक बड़े विस्तार में पहुँच गया है। जिन लोगों को इसका सही ज्ञान नहीं है, वे उस पर अविश्वास कर सकते हैं। परन्तु जो एक बार इसकी शरण में आ जाता है, वह सदा के लिए अन्य चिकित्सकों को नमस्कार कर लेता है।

जो प्राकृतिक चिकित्सा इतना अधिक महत्व रखती है, उपवास उसका प्रमुख अंग है। बल्कि मैं तो यह कहना चाहती हूँ कि उपवास को आगे करके यह महत्वपूर्ण चिकित्सा अपना कार्य आरम्भ करती है।

इस प्राकृतिक चिकित्सा के सिलसिले में ही बहुत दिन पहले मुझे उपवास के सम्बन्ध में उपयोगी साहित्य का अध्ययन करना पड़ा था। सबसे पहले मैंने इस उपवास के प्रयोग अपने साथ और अपने छोटे से परिवार के साथ किये थे। उसकी अपूर्व सफलता पर मैं मुग्ध हो गयी थी। उसके बाद मैंने अपनी प्राकृतिक चिकित्सा का उसे एक सफल अस्त्र बना लिया था।

प्राकृतिक चिकित्सा के साथ-साथ मैंने इस उपवास के विभिन्न प्रकार के रोगों में प्रयोग किये हैं और सभी में मुझे आशातीत सफलता मिली है।

मैं चाहती हूँ कि इस उपवास का सभी लोग लाभ उठावें। इसीलिए मैंने अपनी जानकारी के साथ-साथ दूसरे विद्वानों के

अनुभवों को लेकर यह पुस्तक लिख डाली है। उपवास के सम्बन्ध में सभी बातों को सफलतापूर्वक क्रम से लिखने में मुझसे भूल हो सकती है। परन्तु वह कमी उपवास के साथ नहीं जोड़ी जा सकती।

मैं भली-भाँति जानती हूँ कि खाने-पीने के सम्बन्ध में लगभग सभी परिवारों में लोगों को और विशेषकर स्त्रियों को ज्ञान नहीं होता। यह अज्ञान उनके जीवन का अनेक अवसरों पर भयानक अपराध बन जाता है। मैं साहस के साथ यह कहना चाहती हूँ कि इन बातों का ज्ञान न होने के कारण परिवारों में छोटे और बड़े प्रायः रोज ही बीमार हुआ कहते हैं। बच्चों की बीमारी का एकमात्र कारण यह होता है कि उनकी मातायें अपने स्नेहपूर्ण बच्चों को आवश्यकता से अधिक खूराक पहुँचाकर बीमार करती हैं। मेरी यह पुस्तक उनके बड़े काम की है।

आवश्यकता पड़ने पर यदि भोजन रोका जा सके और रोगों में उपवास किया जा सके तो फिर किसी के बीमार पड़ने का अथवा लगातार बीमार रहने का कोई कारण नहीं रह जाता। जो लोग अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना चाहते हैं, उनसे और उन बहनों से, जो अपने परिवार को नीरोग बनाये रखना चाहती हैं, मैं प्रार्थना करूँगी कि वे उपवास के सम्बन्ध में साहित्य पढ़ें—खूब पढ़ें और उससे लाभ उठावें।

पुराना कानपुर, कानपुर
२२ अगस्त, १९५६

—ज्योतिर्मयी ठाकुर

विषय-सूची

उपवास

---

[१]

प्रकृति का अंतिम उपकार

हम सभी लोग ज़िन्दा रहना चाहते हैं। संसार का जितना उद्योग और व्यवसाय है, सब का सब, हमारी जिन्दगी से ही सम्बन्ध रखता है। जिस दिन हमारी जिन्दगी का अन्त हो जाता है, उसी दिन और उसी समय हमारे जीवन के सभी व्यवसायों का अंत हो जाता है। यहाँ पर यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इन व्यवसायों का विस्तार कहाँ तक है। हमें केवल इतना ही समझना है कि हम सभी को शैशव अवस्था से लेकर बुढ़ापे तक, जिन्दा रहने का अटूट मोह रहता है।

जिस जिन्दगी का इतना बड़ा प्रलोभन हमारे सामने रहता है, उसका स्वरूप और लक्षण क्या है, यह भी हमें जानने की आवश्यकता है। जीवन की प्रतिकूल अवस्था का नाम मृत्यु है। यह मृत्यु हमारे लिए सबसे अधिक अप्रिय है। मृत्यु का आगमन और आक्रमण जिनके द्वारा होता है, उनका नाम है रोग। रोग से सुरक्षित अवस्था को आरोग्य कहते हैं। इस प्रकार जीवन और मृत्यु की आलोचना, हमारे सामने आरोग्य और रोग को ले आती है। उससे हमारी समझ में साफ-साफ यह आता है कि आरोग्य हमारी जिन्दगी का और रोग हमारी मृत्यु

के होने वाले आक्रमण का एक परिचय है। यह तो सभी जानते हैं कि कुछ परिस्थितियों को—जैसे युद्ध, मार-काट, आत्म-हत्या और इस प्रकार की अन्य दुर्घटनाओं को छोड़कर—मृत्यु के पहले शरीर में कोई-न-कोई रोग उत्पन्न होता है और उस रोग के सेहत न होने पर मृत्यु होती है, परन्तु जो रोग मृत्यु का एक संदेश लेकर आते हैं, उनके उत्पन्न होने का कारण क्या है? बिना उस कारण को समझे हुए हमारे लिए यह असम्भव है कि हम रोगों के होने वाले आक्रमण को कभी रोक सकें। इस दशा में हमारे सामने यह प्रश्न पैदा होता है कि रोग क्या है?

आज से बहुत पहले, अत्यन्त प्राचीनकाल में इन रोगों को समझने की कोशिश की गयी थी। उस समय का समाज आज की तरह शिक्षित और सभ्य न था। इसलिए उस समय रोगों के सम्बन्ध में जितनी खोज हो सकी थी, उसी के आधार पर यह मान लिया गया था कि रोग हमारे पूर्व जन्म के अपराधों का फल है। यह निर्णय संसार के सभी देशों में बहुत समय तक चला और आज भी अनेक अंशों में वह समाज के पुराने विचारों में दूध और पानी की तरह मिला हुआ दिखायी देता है। परन्तु आज संसार बहुत-कुछ बदल चुका है। मनुष्य जितना ही शिक्षा और सभ्यता में आगे बढ़ता जाता है, अपने जीवन की सभी बातों में नयी-नयी खोजों के द्वारा वह नयी-नयी बातों के जानने का अधिकारी होता जाता है।

रोगों को दूर करने के लिए और एक रोगी मनुष्य को नीरोग बनाने के लिए संसार में जितनी पुरानी विधियाँ शुरू हुई थीं, वे आज सब की सब पुरानी पड़ गयी हैं और उनका स्थान नयी खोजों ने उसी प्रकार ले लिया है, जिस प्रकार एक वृद्ध के स्थान पर उसका बालक अधिकारी बन जाता है। पुराने रास्ते और तरीके पुराने पड़ गये हैं और उनके स्थानों पर कहीं अच्छे

रास्तों का निर्माण होता जा रहा है। इस प्रकार रोगों के सम्बन्ध में भी मनुष्य को जो नयी जानकारी हुई है, उसके द्वारा उसको रोगों के पहचानने और समझने में पहले की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है।

लगभग सभी परिस्थितियों में स्वास्थ्य को लेकर मनुष्य का जन्म होता है और प्रकृति के नियमानुसार, हममें से प्रत्येक स्वस्थ और नीरोग रहने का अधिकारी है। यदि माता और पिता रोगों से आक्रान्त नहीं हैं तो उत्पन्न होने वाला शिशु नीरोग ही होना चाहिए। प्रकृति नीरोग अवस्था में उसे उत्पन्न करती है। उसके विषय के अनुसार उस छोटे से शिशु में रोगों के आक्रमण को रोकने तथा अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करने के लिए अद्भुत शक्ति होती है। प्रकृति का यह नियम इस बात का प्रमाण है कि वह हम सब को सदा नीरोग रखना चाहती है।

अब प्रश्न यह है कि जब हम नीरोग अवस्था में पैदा हुए हैं और प्रकृति हमें नीरोग रखना भी चाहती है तो फिर हमारे रोगी होने का अथवा रोगों के आक्रमण करने का कारण क्या है ?

जीवित रहने और आरोग्य दशा में जीवित रहने के लिए हम सभी भोजन करते हैं। हमारा भोजन हमको नीरोग तथा जिन्दा रखने के लिए होता है। हमारा भोजन क्या है, प्रकृति ने इसको समझने के लिए हमको ज्ञान दिया है और हमारे भोजन की बहुत सी चीजें उसने उत्पन्न की हैं। भोजन के रूप में उनका हमारे शरीर में प्रवेश होता है। वे पदार्थ हमको स्वस्थ रखते हैं और जीवित रहने में वे हमारी सहायता करते हैं। यदि वे पदार्थ हमें खाने को न मिलते तो स्वास्थ्य और जीवन दोनों की रक्षा करना हमारे लिए असम्भव हो जाता।

हमारे भोजन का इतना ही उद्देश्य है कि वह हमारे स्वास्थ्य

और जीवन की रक्षा करता है। हमारे भोजन के साथ-साथ दो बातों का घनिष्ट और अटूट सम्बन्ध है। एक तो यह कि जो चीजें हमारे भोजन की हो सकती हैं, उन्हीं को हम खाने के काम में लावें। दूसरी बात यह है कि उनको हम इतनी ही मात्रा में खायें, जितनी मात्रा में हमें उनके खाने की आवश्यकता है। इन दोनों बातों का ज्ञान हमें प्रकृति से मिला है। लेकिन मनुष्य का सबसे बड़ा अपराध यह हुआ है कि उसने उस ज्ञान की उपेक्षा करके, उसे बहुत अंशों में नष्ट कर दिया है और उसने प्रकृति के उन दोनों नियमों का उल्लंघन किया है। जो पदार्थ उसके खाने के योग्य नहीं हैं, उसने उसका उपयोग अपने भोजन में किया है और अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में उसने उनको खाने की चेष्टा की है। प्रकृति के इन नियमों को तोड़ने और उनके विपरीत चलने का परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य के शरीर में रोगों के आक्रमण होने लगे। परन्तु फिर भी हमने उन रोगों की परवा न की। हुआ यह कि हमारा शरीर धीरे-धीरे सैकड़ों और हजारों की संख्या में रोगों का घर बन गया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रकृति ने हमें नीरोग अवस्था में पैदा किया है और उसने जीवन-भर हमको नीरोग रखने की चेष्टा की है। प्रकृति के इस नियम को हमें यहाँ पर भी समझ लेने की जरूरत है। इसके लिए हमें जानना चाहिए कि रोग क्या है ?

आटा पीसने की चक्की अनाज पीसने का काम करती है। यदि अनाज के स्थान पर पत्थर अथवा किसी धातु के टुकड़े उसमें पीसे जायँ तो ? उस दशा में आटा पीसने वाले चक्की के पत्थर क्षत-विक्षत हो जायँगे। यदि अनाज के साथ पत्थर अथवा लोहे, पीतल के टुकड़े चक्की में चले जायँ तो भी चक्की के दोनों पत्थर खराब हो जायँगे और जिस अनाज के पीसने का

वे काम करते, उसे वे पीस न सकेंगे। यही अवस्था हमारे शरीर की है। भोजन की जो चीजें हमारे शरीर में पहुँचनी चाहिए, यदि उनके स्थान पर अन्य चीजें जो हमारे भोजन की नहीं हैं, पहुँचेगी तो हमारे शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा पाचन-क्रिया का कार्य होता है, उनके पचाने का काम न कर सकेंगी। उस दशा में भोजन के अवाञ्छनीय पदार्थ हमारे शरीर के भीतर सड़न पैदा करेंगे। वह सड़न एकत्रित होकर हमारे शरीर में भीषण रोगों के उत्पन्न करने की कारण बन जायगी। यही अवस्था उस समय भी होगी, जब आवश्यकता से अधिक मात्रा में भोजन किया जायगा और उसका पाचन-कार्य हमारे शरीर के भीतर न हो सकेगा तो भोजन का अपाच्य भाग शरीर के भीतर रुककर सड़न पैदा करेगा और उसके फलस्वरूप हमारे शरीर में रोगों की उत्पत्ति होगी।

मनुष्य जो भोजन करता है, उसके शरीर के भीतर पाचन-क्रिया के द्वारा रस, रक्त और वीर्य तैयार होता है और यही रस, रक्त और वीर्य हमारे शरीर को स्वास्थ्य और जीवन देते हैं। इनके सिवा शरीर के भीतर भोजन का जो भाग बच जाता है, पर शरीर के काम का नहीं होता, इसीलिए प्रकृति के नियम के अनुसार, मल के रूप में उसका निष्कासन होता है। जब इस मल के निकलने का कार्य ठीक-ठीक नहीं होता और शरीर के भीतर इस मल का कुछ हिस्सा बाकी रह जाता है तो वह समय पाकर सड़न पैदा करता है। इस प्रकार भोजन का अपाच्य अंश और रुका हुआ मल विष बनकर किसी भी समय शरीर में जो व्यथा उत्पन्न करता है, प्रकृति उसको हमारे शरीर से निकलने का काम करती है और आवश्यकतानुसार उसे जिस विधि का प्रयोग करना पड़ता है, उसी का नाम रोग है। शरीर के भीतर उत्पन्न होने वाले विष को निकालने के साधन का नाम

रोग है। इस अवस्था में शरीर विज्ञान के पण्डित रोग को शरीर के शुभचिंतक के रूप में मानते हैं। छोटा और बड़ा—कोई रोग हमारे शरीर को विशुद्ध बनाने का कार्य करता है। यदि उस समय उसके कार्य में हमारी मूर्खता से कोई बाधा न पहुँचे तो उस रोग के द्वारा शरीर का संशोधन अपने आप हो जायगा और हमारा शरीर फिर नीरोग अवस्था में परिणत हो जायगा।

रोगों का यह अर्थ है और हमारे शरीर में उनका यही कार्य है, जो ऊपर लिखा गया है। जो पदार्थ शरीर के लिए अग्राह्य हैं, वे सब विजातीय द्रव्य के नाम से पुकारे जाते हैं। विजातीय द्रव्य और मल के एकत्रित होने पर शरीर में पीड़ा पैदा होती है और विभिन्न प्रकार के संकटों का उसे सामना करता पड़ता है। उस समय प्रकृति फिर हमारे साथ उपकार करती है और उस विजायीत द्रव्य तथा मल को निकालने के लिए हमारे शरीर में तरह-तरह के रोग उत्पन्न करती है, उत्पन्न होने वाले ये रोग हमारे भीतर एकत्रित विष की हमें सूचना देते हैं और उस विष को निकालकर शरीर का परिष्कार करते हैं। प्रकृति का हमारे साथ यह उपकार है। वास्तव में इन रोगों के समझने में जो भूल की जाती है, उसी के कारण इन रोगों को अपने जीवन का एक संकट मान लिया गया है। परन्तु वास्तव में यह सत्य नहीं है। रोगों का जन्म शरीर के आन्तरिक भाग में एकत्रित विष को निकालने के लिए होता है। मनुष्य उसे न समझकर फिर भूल करता है और प्रकृति के नियम में बाधा डालकर उसे यह शरीर के परिष्कार और संशोधन का अवसर नहीं देता। इसका परिणाम यह होता है कि शरीर की विषाक्त अवस्था में हमारी असमय मृत्यु होती है।

प्रकृति का यह उद्देश्य नहीं है। वह नीरोग अवस्था में

मनुष्य को जन्म देकर उसे सदा नीरोग रखना चाहती है। प्रकृति के नियमों पर चलकर मनुष्य दीर्घ जीवन लाभकर सकता है। परन्तु अपने झूठे विश्वासों के कारण यह इस लाभ से वञ्चित हो जाता है। शरीर के भीतर उत्पन्न होने वाले संकटों को हम सब ने रोगों का नाम दिया है। यद्यपि यह बात सही नहीं है। फिर भी दोनों में इतना कम अन्तर है कि एक दूसरे से दोनों को अलग करना और उनको अलग-अलग नाम देना, सब के लिए सहज नहीं है। इस प्रकार की सभी बातें साधारण स्त्री-पुरुषों के समझने के लिए हमें लिखनी हैं, इस-लिए विवश होकर हमें साधारण जनों की सुविधा के लिए उन संकटों को रोगों के नाम से पुकारना पड़ेगा। ऐसा न करने से पाठकों के सामने बार-बार भ्रम उत्पन्न होगा।

अपने शरीर में रोगों के उत्पन्न करने के कारण हम स्वयं हैं। प्रकृति हमें नीरोग रखने का बार-बार प्रयत्न करती है। परन्तु उसे हम काम नहीं करने देते। मनुष्य उसके नियमों का—उसकी आशाओं का बार-बार उल्लङ्घन करता है। फिर भी प्रकृति हम पर दया करती है। हमको नीरोग रखने और दीर्घ जीवन देने के लिए यह बार-बार चेष्टा करती है। जो रोग हमारे शरीर के विष का शमन करना चाहते हैं, उनको हम से बाधा पहुँचती है और उसका फल यह होता है कि उस विष का शमन नहीं हो पाता और उसका परिणाम भयानक होता है। हमें फिर एक बार समझ लेना चाहिए कि प्रकृति हमें नीरोग रखना चाहती है और दीर्घ जीवन देने के लिए यह बार-बार प्रयत्न करती है। एकत्रित विष जब हमारे शरीर में भीषण रूप धारण करता है, उस समय भी प्रकृत्ति हमारी रक्षा करती है। यह हमें नीरोग देखना चाहती है और असमय मृत्यु से वह हमारी रक्षा करना चाहती है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे शरीर के

साथ प्रकृति का जो अंतिम उपकार होता है, उसे हम सभी उपवास के नाम से जानते हैं। हमारी रक्षा के लिए प्रकृति का यह आखिरी प्रयास है। उपवास के द्वारा प्रकृति हमारी किस प्रकार रक्षा करती है और किस प्रकार यह एकत्रित विष को हमारे शरीर से निकालकर हमें स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन देती है, इसका प्रतिपादन अगले पृष्ठों में किया जायगा।

---

[२]
उपवास एक मात्र औषधि है

उपवास का महत्व समझने के लिए और यह जानने के लिए कि उसके द्वारा हमारा किस प्रकार लाभ होता है, हम सबको रोगों को समझने की कोशिश करनी चाहिए।

पिछले पृष्ठों में इन रोगों के सम्बन्ध में संक्षेप में लिखा जा चुका है। मैं निर्भीकता के साथ यह कहने का साहस करती हूँ कि मनुष्य जाति की पुरानी धारणा रोगों के विषय में न केवल जटिल है बल्कि बहुत अंशों में भ्रान्तिपूर्ण है। इन रोगों के सम्बन्ध में पूरे बीस वर्षों का मेरा अपना अनुभव है। मैंने पुराने और नये—दोनों प्रकार के विचारों और उसकी प्रणालियों को जानने और प्रयोग में लाने का वर्षों प्रयत्न किया है और अंत में नवीन खोजों के अनुसार व्यवस्था देने से रोगों को दूर करने में मुझे सफलता मिली है। इतने दिनों के बाद, मेरा यह अटूट विश्वास हो गया है कि चिकित्सा के क्षेत्र में यदि व्यवसाय को स्थान न मिला होता तो संसार के मनुष्य उतनी अधिक संख्या में रोगी न होते, जितने कि वे आज हैं। प्रत्येक शिक्षित और सभ्य देशों में डाक्टरों वैद्यों और हकीमों की संख्या बढ़ती जाती

है और इन चिकित्सकों की जितनी ही संख्या बढ़ रही है, समाज में उतने ही अधिक रोगों की वृद्धि हो रही है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि रोगों की यह संख्या उस समय तक कम नहीं हो सकती, जब तक चिकित्सा से व्यवसाय को पृथक नहीं किया जा सकता। यहाँ पर इस विषय में अधिक लिखना अप्रासंगिक है। इसलिए मुझे मूल विषय पर आ जाना चाहिए।

जिस प्रकार किसी का हित करने से मित्रता और किसी का अहित करने से शत्रुता उत्पन्न होती है, ठीक उसी प्रकार खाने-पीने के पदार्थों में भूल करने से शरीर के भीतर विकारों की उत्पत्ति होती है। ये विकार हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार की पीड़ा उत्पन्न करते हैं और यदि उनका शमन न हुआ—उन विकारों की उत्पत्ति न रोकी गयी तो लाख दवायें करने पर भी असमय मृत्यु होती है। रोगों के सम्बन्ध में इतनी ही परिभाषा है। यों तो कोई भी चिकित्सक रोगों की संख्या नहीं बता सकता—उसकी समझ में सैकड़ों-हजारों और लाखों रोग हैं। परन्तु इन रोगों के सम्बन्ध में संसार के विद्वानों ने जो नयी खोजें की हैं, उनके हिसाब से एक ही रोग है और उन हजारों-लाखों रोग का एक ही कारण है। वह कारण है शरीर के भीतर विकारों का संचित होना। इस एकत्रित विकार को ही हम विजातीय द्रव्य के नाम से पुकारते हैं। नयी खोजों के हिसाब से इसी विजातीय द्रव्य को अँगरेजी में फॉरेन मैटर कहा जाता है। समस्त रोगों के सम्बन्ध में इतनी ही बात है। इस छोटी-सी बात को कोई भी समझ सकता है। पढ़ा भी समझ सकता है और बिना पढ़ा भी। यह सीधी सी बात सभी की समझ में आसानी के साथ आ सकती है और जितनी आसानी से हम लोग उसे समझ सकते हैं, उतनी ही आसानी के साथ हम

भयानक से भयानक रोग को अपने शरीर से दूर कर सकते हैं। समझने और विश्वास करने की बात है।

रोगों के सम्बन्ध में किसी जटिल और विस्तृत परिभाषा की जरूरत नहीं है। जो लोग रोगों से बचना चाहते हैं अथवा उत्पन्न हुए रोगों का शमन करना चाहते हैं, उनको भोजन के सम्बन्ध में समझने की आवश्यकता है। जो भोजन जिन्दा रहने के लिए खाया जाता है, वही हमको बीमार भी करता है और वही असमय मृत्यु का कारण भी होता है। यह बात बहुत अंशों में सही है लेकिन कुछ अंशों में गलत भी है। इसलिए कि हमारा भोजन हमारी-बीमारी का कारण नहीं है। भोजन के नाम पर हमारी भूलें हमारे रोगों का कारण हैं।

हम लोग यदि सावधानी के साथ समझने की चेष्टा करें तो हमारी समझ में सब बातें आजाँयगी। प्रकृति का नियम यह है कि भूख लगने पर हम भोजन करें और जो हमारे खाने के पदार्थ हों, उन्हीं को हम खाने के काम में लावें। लेकिन हम लोगों में ऐसा नहीं होता। वास्तव में भूख के लिए भोजन नहीं किया जाता, बल्कि खाने के लिए खाना खाया जाता है। थोड़े से गरीब मजदूरों और किसानों की बात यदि छोड़ दी जाय तो बाकी सभी लोगों की जिन्दगी इसी प्रकार की भूलों से भरी हुई है। बड़े-बड़े शहरों में तो इसी प्रकार के शत-प्रतिशत लोगों की संख्या है। मेरा सही अनुमान यह है कि शहरों में पाँच हजार में भी ऐसा एक मनुष्य न मिलेगा, जो भूखे होने पर भोजन करता हो। छोटे और बड़े—सभी प्रकार के घरों में भोजन के समय भोजन बनता है और बच्चे से लेकर बूढ़े तक को भोजन बनने पर खाना पड़ता है। भूख लगने और न लगने का कोई प्रश्न ही नहीं है। जिन

लोगों को नौकरी पर जाना है, अपनी दूकान पर पहुँचना है, अथवा छोटे बालकों को पढ़ने जाना है, उन्हें तो एक निश्चित समय पर भोजन करना ही पड़ेगा। उनको उस समय भूख नहीं लगती। उसके पहले का खाया हुआ भोजन पचने नहीं पाता, फिर भी उनको भोजन करना पड़ता है। विकारों और रोगों की उत्पत्ति का कारण वहीं से आरम्भ होता है। देहातों से लेकर बड़े-बड़े शहरों तक—सर्वत्र एक-सी अवस्था है। इस दशा में यदि सारा समाज रोगी दिखायी देता है तो उसमें आश्चर्य क्या है। सच बात तो यह है कि इस दशा में लोग यदि रोगी न हों तो आश्चर्य है। भोजन करने की ये प्रथायें दूषित हैं और वही रोग उत्पन्न करती हैं। ये प्रथायें जहाँ—जिन घरों और परिवारों में जितनी ही मजबूत हैं, उन्हीं घरों और परिवारों में रोगों की अधिकता रहती है! गरीब घरों की अपेक्षा समर्थ और धनिक परिवारों में बच्चों के अधिक मरने का यही कारण है। मेरा बहुत दिनों का अनुभव यह है कि प्रत्येक धनिक परिवार में रोजाना सबेरे और शाम को एक आदमी की यह बँधी हुई ड्यूटी होती है कि वह नित्य निश्चित समय पर डाक्टर अथवा वैद्य के यहाँ जावे और अपने परिवार के रोगियों के लिए दवा ले आवे। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि इस प्रकार के परिवारों में नियमित रूप से बच्चों को दवायें दी जाती हैं। पूछने से मुझे तो यह भी मालूम हुआ कि बीमार बच्चों को तो दवायें रोजाना लाकर दी ही जाती हैं, बल्कि उन बच्चों को भी प्रायः नित्य दवायें लाकर इसलिए खिलायी जाती हैं कि जिससे वे बीमार न पड़ जाँय। इतना सब होने पर भी वे आगे-पीछे बीमार पड़ते हैं और उनको दवा देने का कार्य बराबर जारी रहता है।

इस प्रकार की बातों को देखकर यह मान लेना पड़ता है कि हम

लोगों ने अपने स्वास्थ्य के साथ एक खिलवाड़ कर रखा है। हमें तनिक भी अपने आरोग्य जीवन की परवा नहीं रह गयी। हमारी जिन्दगी की सभी बातें एक तरफ से ऐसी हो गयी हैं, जिनमें हमको और हमारे परिवार के लोगों को बीमार ही रहना चाहिए। खाने-पीने की दुरवस्था लोगों को सीधे बीमारियों की तरफ ले जाती है और उनको जितने रोगों का शिकार होना पड़ता है, उन सबका कारण भोजन में अधिकता है। खाने-पीने की परिस्थितियों को देखकर बार-बार आश्चर्य होता है। घरों से लेकर बाहर तक—विशेष कर शहरों के जीवन में खाने-पीने की व्यवस्था भीषण रूप से चल रही है। आज के बढ़ते हुए रोग इसी का परिणाम हैं।

ऊपर लिखी हुई सभी बातें भोजन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। खाने-पीने की जो परिस्थितियाँ हमारे सामने हैं, उनका फल यह होता है कि शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य एकत्रित होता रहता है और उसके प्रभाव से रोगों का प्रादुर्भाव होता है। इस दशा में भी प्रकृति हमारी रक्षा करने की चेष्टा करती है। जब हम आवश्यकता न होने पर भी भोजन करने से बाज नहीं आते तो प्रकृति इस बात की चेष्टा करती है कि हम भोजन न कर सकें। क्योंकि भोजन न करने से संचित विजातीय द्रव्य का पचना आरम्भ होता है। इसलिए उस दशा में यदि भोजन रोक दिया जाता है और तब एकत्रित विकार पचकर नष्ट हो जाते हैं और विजातीय द्रव्य मल के रूप में शरीर से निकल जाता है और शरीर फिर शुद्ध हो जाता है। इस दशा को उत्पन्न करने के लिए प्रकृति हमारी भूख को नष्ट कर देती है। परन्तु हम लोग इसकी परवा नहीं करते और भूख के न लगने पर भी भोजन करने का कार्य बराबर

जारी रहता है। इस अवस्था में प्रकृति की चेष्टा आगे बढ़ती है। वह रुचि नष्ट कर देती है और उसके बाद भी यदि भोजन किया जाता है तो प्रकृति के नियमानुसार अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं। जी मिचलाना, जीभ में कड़वापन पैदा होना, खाने का नाम सुनते ही घृणा पैदा होना, दस्त आना और उलटी होना आदि सब उसी के परिणाम हैं। इस प्रकार के उपद्रव रोकते हैं कि भोजन न किया जाय। यदि प्रकृति के इतना करने पर भी उसके अनुसार चला जाय और खाना रोक कर एकत्रित विजातीय द्रव्य को पचने का अवसर दिया जाय तो सभी प्रकार के रोगों से रक्षा होती है। परन्तु हम लोग प्रकृति को अपना काम नहीं करने देते। हम बिना खाये नहीं रह सकते। प्रकृति कठोरता के साथ अपने नियमों को पालन कराने के लिए व्यवहार करती है। उसकी यह व्यवस्था उपवास के रूप में हम सबके सामने आती है।

शरीर में विकारों के एकत्रित होने पर प्रकृति चाहती है कि खाना रोककर उपवास किया जाय। यह उपवास छोटे बच्चों से लेकर अत्यन्त बूढ़े आदमियों तक—सबके लिए अत्यन्त आवश्यक है। उपवास प्रकृति की प्रेरणा है। विकारों के संचित होने पर, मल को शरीर से निकालने के लिए, उपवास प्रकृति का एक सफल प्रयत्न है। एक शिशु से लेकर बूढ़ों तक प्रकृति इस प्रयत्न को सबके साथ काम में लाती है। वह पूरी शक्ति लगाकर उस दशा में हम सबको भोजन छोड़ देने और उपवास करने के लिए विवश करती है।

आवश्यकता न होने पर भोजन से अथवा अयोग्य भोजन करने से जो विकार उत्पन्न होते हैं, उसको निकालने के लिए और शरीर को फिर शुद्ध बनाने के लिए उपवास प्रकृति की

एक सफल औषधि है। विकारों को निकालने के लिए उपवास के अतिरिक्त और किसी औषधि का आज तक कहीं किसी चिकित्सा में आविष्कार नहीं हुआ। संसार की प्रत्येक चिकित्सा में प्रकृति के इस नियम का आश्रय लिया जाता है। कहीं कम और कहीं अधिक। जहाँ जितना अधिक इसका आश्रय लिया जाता है, वहाँ रोगों को सेहत करने में उतनी ही अधिक सफलता मिलती है। औषधियों का प्रयोग चिकित्सा में केवल एक व्यवसाय है। यदि किसी भी रोग में आवश्यकता के अनुसार उपवास से लाभ उठाया जाय, तो फिर किसी दूसरी 'औषधि की आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल उपवास की सहायता से किसी भी रोग का अन्त हो जाता है।

इस बात को बार-बार समझने की आवश्यकता है कि उपवास की सहायता से कोई भी रोग छोटा और बड़ा, साधारण और असाधारण अपने आप सेहत हो जाता है। उसके लिए किसी दूसरी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। विकारों के उत्पन्न होने पर प्रकृति स्वयं उपवास कराना चाहती है और इसके लिए वह विवश करती है। आज से पहले प्राचीन काल में लोग औषधियों के पक्ष में न थे। आज भी जहाँ इस शिक्षा और सभ्यता का विस्तार नहीं हुआ और चिकित्सा का जाल फैल नहीं सका, वहाँ अब भी ऐसे आदमी पाये जाते हैं जो बीमार पड़ने पर दवा नहीं करते। औषधियों के सेवन से वे घृणा करते हैं। वे बीमार होने पर खाना बन्द कर देते हैं और कई-कई दिनों तक बिना खाये रहकर वे अपने आप सेहत हो जाते हैं। इस प्रकार के आदमी आज भी देखे जाते हैं।

हमारे जीवन में इस उपवास का बहुत बड़ा महत्व है। उपवास के द्वारा शरीर को जो लाभ होता है, वह लाभ औषधियों

का प्रयोग करने पर नहीं होता। यह बात अवश्य है कि आज व्यावसायिक चिकित्सा का विस्तार बहुत बढ़ गया है और लगभग सभी परिस्थितियों में उसी के द्वारा रोगों को सेहत कराने की कोशिश की जाती है, परन्तु उसका एक दुष्परिणाम जो सामने आता है, उसकी जानकारी से बड़ी संख्या में लोग अपरिचित हैं। औषधियों के द्वारा रोगों का शमन नहीं होता। बल्कि होता यह है कि संचित विकारों का उभार शांत हो जाता है और कुछ समय के बाद उन विकारों का उभार दूसरे रोगों के रूप में होता है। रोगों को सेहत करने के लिए किसी भी चिकित्सा में जो औषधियों का प्रयोग होता है, उसका यही परिणाम होता है। इन औषधियों के कारण विकारों के द्वारा उत्पन्न होने वाला विष बढ़ता रहता है और उसके द्वारा शरीर का क्षय होता रहता है। औषधियों से शरीर और मस्तिष्क कभी भी निर्विकार नहीं होता। जो एक बार रोगी होता है, वह एक न एक रोग में, औषधियों का प्रयोग करने के कारण रोगी बना रहता है। उसका जीवन औषधियों के सहारे पर चलता है। रोगों को सेहत करने के नाम पर औषधियों का यह परिणाम हुआ है।

इस दशा में मैं फिर एक बार कहूँगी कि हम सब को उपवास के महत्व पर ध्यान देना चाहिए। मनुष्य को छोड़-कर दूसरे प्राणियों के न अस्पताल होते हैं और न औषधालय। परन्तु वे सभी नीरोग रहते हैं। पालतू पशुओं का अनुभव हम सभी लोगों को आसानी के साथ मिलता है। हममें से अधिकांश लोग इस बात को जानते हैं कि कोई भी पालतू पशु बीमार होने पर खाना छोड़ देता है और वह उस समय तक अपना खाना नहीं खाता, जब तक उसके शरीर का एकत्रित विजातीय द्रव्य मल के द्वारा निकल नहीं जाता। जब उसका शरीर शुद्ध हो जाता है तो फिर वह खाना खाता है।

पशुओं, पक्षियों और दूसरे सभी प्राणियों में प्रकृति के इस उपवास का नियम बराबर काम करता है। उनमें सभी प्रायः इसीलिए नीरोग रहते हैं कि उनके जीवन में प्रकृति के नियमों का पूर्ण रूप से पालन होता है और उपवास के इस नियम के द्वारा उनको नीरोग होने में देर नहीं लगती।

शिक्षा के विकास में अब पालतू पशुओं की दशा भी कुछ, मनुष्यों की सी होने लगी है। दूध देने वाले पालतू पशुओं, अच्छे घोड़ों और बैलों को आवश्यकता से अधिक उनको खाना दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस प्रकार के पालतू पशु, मनुष्यों की भाँति बार-बार बीमार होते हैं। उनके जीवन में आदमियों के संसर्ग से तीन खराबियाँ उत्पन्न हुई हैं। उनको अपने स्वाभाविक भोजन से वंचित होना पड़ा है और जो खाना उनके लिए अप्राकृतिक होता है, वह उनको दिया जाता है। दूसरी बात यह है कि अनेक प्रकार की कोशिशों से उनको अधिक खाना खिलाया जाता है। इन दोनों बातों का परिणाम यह हुआ है कि इस प्रकार के पशु भी बार-बार बीमार होने लगे हैं। इसके बाद तीसरी खराबी यह पैदा हुई है कि ये पशु खाना छोड़कर और उपवास करके सेहत नहीं होने पाते। उनके पालने वाले उनको जबरदस्ती खाना खिलाने की चेष्टा करते हैं और उनको सेहत करने के लिए पशुओं के दवाखानों की औषधियों का प्रयोग करते हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि इस प्रकार के पालतू पशुओं में रोगों की संख्या बढ़ने लगी है।

---

[३]

उपवासों का धार्मिक महत्व

पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि प्राचीन काल में रोगों से शरीर के पीड़ित होंने पर लोग खाना छोड़कर और उपवास करके सेहत होने पर विश्वास करते थे और यह भी लिखा जा चुका है कि उस प्रकार के विश्वास वाले स्त्री-पुरुष अब भी जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं। यह बात अवश्य है कि उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

जब से चिकित्सा का प्रचार हुआ और रोगों को शान्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की औषधियों का आविष्कार हुआ, उस समय से उपवास पर विश्वास करने वालों के विचारों को धक्का पहुँचा। चिकित्सा के विस्तार के साथ-साथ औषधियों के प्रयोग बढ़े और प्रकृति पर निर्भर रहकर जो लोग अपने रोगों में सेहत पा लेते थे, उनकी संख्या घटने लगी। यहाँ पर हमें केवल इतनी ही बात का समर्थन करना है कि औषधियों के आविष्कार और विस्तार के पूर्व संसार के सभी देशों में लोग प्रकृति पर निर्भर रहते थे और बीमार पड़ने पर खाना बन्द कर देते थे। इसका नतीजा यह होता था कि वे लोग सहज ही अपने सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति पा जाते थे।

प्राचीन काल में शरीर और मस्तिष्क को निर्विकार करने के लिए उपवास करते थे। उनका विश्वास था कि विकार उत्पन्न होने पर उपवास करना ही विकार दूर करने का एकमात्र उपाय है। इस प्रकार के विश्वास सभी लोगों में पाये जाते थे। इस विश्वास का ही यह परिणाम हुआ था कि अत्यन्त प्राचीन काल में धार्मिक अनुष्ठानों में उपवास को शामिल

किया गया था। हिन्दुओं की धार्मिक प्रतिष्ठा का मन्दिर इसी विश्वास पर खड़ा किया गया था और इसीलिए उनके बहुत से धार्मिक अनुष्ठान उपवासों के साथ आरम्भ होते थे। उनका प्रतिबिम्ब आज भी हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में दिखायी देता है। त्योहारों का सम्बन्ध बहुत कुछ धार्मिक बातों के साथ है। इसलिए हमारे अनेक त्योहारों में भी उन उपवासों का प्रभाव पड़ा और हमारे कितने ही त्योहार आज तक उपवास रहकर मनाये जाते हैं।

प्राचीन काल में इन उपवासों के विश्वास को मजबूत बनाने के लिए अनेक प्रकार की चेष्टायें की गयी थीं। बहुत-से लोग अपने-अपने देवताओं की उपासना करते थे और उनके नाम का किसी एक दिन व्रत रहा करते थे। हिन्दुओं के धार्मिक आचरणों में उपवासों का बहुत बड़ा विस्तार है। मैं उनके सम्बन्ध में अधिक लिखना यहाँ पर आवश्यक नहीं समझती। केवल मैं इतना ही यहाँ पर बताना चाहती हूँ कि स्त्री और पुरुष भिन्न-भिन्न अवसरों पर व्रत और उपवास रहकर अपने-अपने देवता की उपासना करते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करने से उनके देवता प्रसन्न होंगे।

व्रत और उपवासों के सम्बन्ध में हिन्दुओं की तरह संसार की दूसरी जातियाँ भी विश्वास करती थीं और उनके अधिकांश लोग आज भी विश्वास करते हैं। सभ्य और असभ्य—सभी प्रकार की जातियों में इस प्रकार के विश्वास पाये जाते थे और उनके अस्तित्व आज भी मौजूद हैं। संसार की बड़ी जातियों में मुसलमानों का प्रमुख स्थान है। उनके यहाँ वर्ष के बारह महीनों में रमजान नाम का एक महीना होता है और उस पूरे महीने के दिनों में अधिकांश मुसलमान रोजा रहते हैं। रोजा उपवास को कहते हैं। मुसलमानों में रोजा रहने का बहुत बड़ा

महत्व है। पूरे एक महीने तक नित्य नियमित रूप से उपवास करना और दिन में भोजन और जल के नाम पर कुछ भी ग्रहण न करना उपवास के नाम पर एक असाधारण बात है। मुसलमानों में सभी श्रेणी के लोग रोजा रहते हैं। उनका यह एक धार्मिक कृत्य है और इस धार्मिक कार्य में सभी श्रेणी के लोगों को समान रूप से अधिकार है। इस अधिकार में गरीब और अमीर, स्त्री और पुरुष तथा लड़कों और लड़कियों का भेद-भाव नहीं है। सभी लोग बड़ी श्रद्धा के साथ रोजा रहना स्वीकार करते हैं।

इन रोजों के सिवा मुसलमानों में वर्ष के दूसरे दिनों में भी रोजे रहे जाते हैं और कुछ रोजे तो वर्ष के प्रतिमास में चलते हैं। मुसलमानों में भी रोजा रहना एक धार्मिक कार्य है और इसीलिए उनकी समस्त कठिनाइयाँ रोजा रहने वाले सभी मुसलमान गर्व के साथ सहन करते हैं।

हिन्दुओं और मुसलमानों की तरह एक बहुत बड़ी संख्या संसार में ईसाइयों की है। उनमें भी व्रत और उपवास रहने की प्रथायें हैं। किसी विस्तार में न जाकर यहाँ पर इतना ही समझ लेना आवश्यक है कि इन उपवासों के सम्बन्ध में सभी जातियों के विश्वास एक-से हैं। प्रत्येक जाति में इन उपवासों को धार्मिक कार्यों के साथ जोड़ा गया है। यद्यपि इसका स्पष्ट अभिप्राय शरीर और मस्तिष्क के विकारों को दूर करना है। लेकिन प्राचीन काल में इस सत्य को सीधे-सीधे न बताकर उस समय के स्त्री-पुरुषों को इनके धार्मिक रूप में डाला गया था। दोनों का अर्थ एक ही निकलता है। किसी भी अभिप्राय से उपवास रहने का फल लाभदायक होता है। उससे शरीर और मस्तिष्क के विकारों का शमन होता है और मनुष्य आरोग्य लाभ करता है।

ऊपर की विवेचना का अर्थ यह है कि उपवास का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीनकाल से हम सब के साथ चला आ रहा है। बहुत अधिक समय बीत जाने के बाद मनुष्य के जीवन की परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल गई हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य ने बहुत बड़ी उन्नति की है। प्रत्येक अवस्था में उन्नति के मार्ग में वह आगे बढ़ा है। इसीलिए अन्यान्य बातों के साथ-साथ इन उपवासों के सम्बन्ध में भी वह बहुत-सी नयी बातों की जानकारी को प्राप्त कर सका है।

इन उपवासों के सम्बन्ध में यहाँ पर एक बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है और वह यह कि उनकी अनेक बातों में आज बहुत-कुछ अन्तर पड़ गया है। मनुष्य आदि काल से जीवन के सत्य की खोज में निकला था और अनेक युग पार करता हुआ वह आज जहाँ पहुँचा है, वह जीवन के सत्य को पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप से समझने का अधिकारी हो सका है। यहाँ पर मैं केवल उपवासों के सम्बन्ध में ही बताना चाहती हूँ। जो अन्तर पड़ गये हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१—व्रतों और उपवासों का सम्बन्ध सीधा हमारे शरीर और मस्तिष्क के साथ है।

२—व्रतों और उपवासों से विकारों का शमन होकर शरीर और मस्तिष्क का परिष्कार होता है।

३—परिष्कृत शरीर और मस्तिष्क हमारे जीवन का आरोग्य है। हमारे जीवन की प्रत्येक सफलता का आरम्भ वहीं से होता है।

४—उपवास में खाना बन्द कर दिया जाता है किन्तु पानी का पीना बन्द नहीं किया जाता। बल्कि उपवास के दिनों में आवश्यकता से अधिक पानी पीने की चेष्टा की जाती है। आज के नवीन अनुसंधानों की यह देन है।

५—उपवास के सम्बन्ध में नयी खोजों के अनुसार, उपवास खाली पेट आरम्भ होता है और अत्यन्त पाचक पदार्थों के द्वारा उपवास तोड़ा जाता है।

६—जो उपवास जितना ही लम्बा होता है, वह उतने ही उत्तर-दायित्व के साथ आरम्भ होता है और अन्त होता है।

इस प्रकार कितनी ही बातों को लेकर पहले की अपेक्षा आज उपवासों की प्रणाली में अन्तर पड़ गया है। शरीर और मस्तिष्क से विकारों को दूर करने के लिए उपवास के दिनों में शुद्ध और ताजे जल का अधिक पीना और बार-बार पीना, उपवास के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है। जो उपवास धार्मिक कृत्यों के साथ किये जाते हैं, उनमें जल के प्रयोग क्यों रोके गये हैं, इसके सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलते। आज भी लोग धार्मिक भावनाओं की प्रेरणा से उपवास करते हैं, वे उपवास की पुरानी प्रणाली पर ही विश्वास करते हैं। पुराने विश्वासों और उस समय की इस विषय में धार्मिक आज्ञाओं पर विचार करने से पता चलता है कि उन दिनों में पापों की मुक्ति के लिए ही ये उपवास रखे जाते थे। यदि यही बात सही थी तो उस उद्देश्य में और आज के उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं है। जिसे आज की भाषा में विकार कहा जाता है, उस समय की भाषा में वह अपराध और पाप माना जा सकता है।

आज उपवास का प्रयोग केवल स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए साधारण तौर पर माना जाता है। यद्यपि उसके प्रयोग और भी अधिक गहराई में अपना काम कर सकते हैं और मनुष्य अनेक तरीकों से उसके विभिन्न प्रकार के लाभ उठा सकता है।

धार्मिक दृष्टि से भी उपवास का महत्व है। चित्त को एकाग्र करने के लिए और ईश्वर के प्रति तनमय होने के लिए भी

उपवास का प्रयोग बहुत बड़ा प्रभाव रखता है। जो व्यक्ति मिताहारी और अल्पाहारी नहीं हैं और जिसके भोजन में नियंत्रण नहीं है, उसके हृदय में ईश्वर के प्रति आस्था नहीं उत्पन्न हो सकती। इसलिए यह एक मानी हुई बात है कि प्राचीन काल में उपवासों का प्रयोग बहुत कुछ इसीलिए किया जाता था।

आज भी लोग धार्मिक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर उपवास के साथ ईश्वर की आराधना करते हैं। ऐसा करने से उनके सामने दो प्रकार के लाभ होते हैं। एक तो शरीर के परिष्कार का और दूसरा मन को एकाग्र करने का। ये दोनों लाभ उसी दशा में सम्भव हैं जब सही तरीकों के साथ उपवास का प्रयोग किया जाता है।

---

[४]

उपवास के प्रभाव

प्राचीन काल में धार्मिक व्यक्तियों के द्वारा जो उपवास किये जाते थे और आज भी उस प्रकार की मनोवृत्ति वाले जिस उद्देश्य से इनके प्रयोग करते हैं, यदि उनके दृष्टिकोण को सामने से हटा दिया जाय तो आजकल साधारण तौर पर उपवास के प्रयोग खोये हुए स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। परन्तु इतनी ही बात नहीं है। उपवास का मनुष्य के जीवन में बहुत ऊँचा स्थान है। इसके द्वारा अनेक प्रकार के जो लाभ उठाये गये हैं और आज भी कुछ विशेष व्यक्तियों के द्वारा उठाये हैं, मेरा अनुमान है कि समाज के साधारण स्त्री-पुरुष उनसे

वञ्चित हैं। इसलिए संक्षेप में इन बातों पर भी यहाँ मैं प्रकाश डालना चाहती हूँ।

सीधे-सादे शब्दों में उपवास हमारे शरीर और मस्तिष्क के विकारों को दूर करते हैं। इतना जानकर और उस पर विश्वास कर यह समझने की आवश्यकता है कि अगर हमारे जीवन के समस्त विकार किसी प्रकार नष्ट हो सकें तो हमारे श्रेष्ठ बनने में फिर और बाधा ही क्या पैदा हो सकती है। एक मनुष्य ऊँचे दरजे का आदमी बन सकता है, वह श्रेष्ठता की बड़ी-से-बड़ी ऊँचाई पर पहुँच सकता है, यदि उसके जीवन के विकार, उसकी इस उन्नति में बाधक न हों। इस दशा में ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जो अपने आपको श्रेष्ठ न बनाना चाहता हो? फिर वे श्रेष्ठ क्यों नहीं बन पाते?

संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जिसे प्रकृति की ओर से एक ऐसी क्षमता मिली है कि जिसके द्वारा वह बहुत ऊँचे दरजे का मनुष्य बन सकता है। इसके लिए प्रकृति ने उसे योग्यता और प्रतिभा दी है। फिर भी उस योग्य उसके न बन सकने के कारण, उसके जीवन के विकार हैं। साधारण तौर पर लोग यह जानते हैं कि मनुष्य के जीवन की ख़राबियों को उसकी शिक्षा दूर करती है। लेकिन यदि शिक्षा और उपदेश उसके विकारों को दूर करने में असफल हो जायँ तो फिर और कौन-सा उपाय है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी त्रुटियों, कमजोरियों और विकारों को दूर कर सकें?

इस प्रश्न के उत्तर में मैं साहस पूर्वक बताना चाहती हूँ कि इस उद्देश्य में और इस कार्य में जब शिक्षा और उपदेश को सफलता नहीं मिलती तो उसके बाद भी एक ऐसी साधना है जिसके द्वारा मनुष्य अपने आत्मा के मैल को धोकर

उसे साफ कर सकता है। इस प्रकार की जो साधना है, वह उपवास है।

साधारण जनों के लिए उपवास का यह कार्य कुछ आश्चर्य-जनक मालूम होगा। परन्तु इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। संसार के जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने उपवास की साधना के द्वारा अपने विकारों को धोने और फिर जीवन की श्रेष्ठता प्राप्त करने में सफलता पायी है, उनके जीवन के कार्यों और उनकी साधनाओं के अध्ययन के आधार पर मैं इस विषय में कुछ काम की बात लिखना चाहती हूँ। मैं स्वयं उस पर विश्वास करती हूँ और मैं जानती हूँ कि मैं जो कुछ यहाँ पर लिखने जा रही हूँ, उसका कोई भी लाभ उठा सकता है।

मान लीजिए कि एक चोर है। किसी उपदेशक के लाख कोशिश करने पर भी उसमें कोई परिर्वतन नहीं हुआ। जीवन की इस गम्भीर परिस्थिति में भी वह व्यक्ति अपना परिवर्तन कर सकता है और अपने आत्मा के मैल को धोकर वह एक बहुत अच्छा आदमी बन सकता है। उसके ऐसा होने में, जब और सब बातें असफल हो जाती हैं तो भी उपवास उसकी सहायता कर सकता है। परन्तु उसी अवस्था में जब वह अपराधी अपना स्वयं अपराध धो डालने की अभिलाषा रखता है। इस बात को मैं इन्हीं पृष्ठों में और भी स्पष्ट करने की चेष्टा करूँगी।

जीवन की श्रेष्ठता हमारे शरीर और मस्तिष्क के परिष्कार और निर्विकार पर निर्भर है और उपवास का यही कार्य है। इस बात को आरम्भ से लेकर अब तक लिखा गया है। अब मैं जीवन के उन विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालना चाहती हूँ जिनमें उपवास का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है।

१—शरीर पर उपवास का प्रभाव—पिछले समस्त पृष्ठों को पढ़ चुकने के बाद यह तो आसानी से समझ में आ जाता

है कि शरीर के भीतर जो विजातीय द्रव्य एकत्रित होता है, उपवास उसको शरीर से निकालने का काम करते हैं और इस प्रकार विकारों के नष्ट हो जाने से शरीर रोगमुक्त हो जाता है।

इस विषय में भली-भाँति लिखा जा चुका है। इसलिए यहाँ पर इसके अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जहाँ तक विकारों के शमन और रोगों की सेहत का प्रश्न है, उपवास आरोग्य लाभ करने के लिए सबसे उत्तम साधन है। उपवास को अधिक सरल और सफल बनाने के लिए इन दिनों में जिन नवीन बातों की खोज का काम हुआ है, उनको आगामी पृष्ठों में आवश्यकता के अनुसार साफ-साफ लिखा जायगा। रोग-निवारण के अतिरिक्त जीवन के दूसरे पहलुओं में भी उपवास का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसलिए अनेक बातों में उसके असर का जिक्र नीचे की पंक्तियों में किया जाता है।

२—मन की एकाग्रता—मनुष्य के जीवन की प्रत्येक सफलता उसके मन की एकाग्रता पर निर्भर है। विद्यार्थी को अध्ययन के लिए, पुरुषार्थी को सफलता के लिए और तपस्वी को परमार्थ के लिए मन की एकाग्रता की आवश्यकता होती है।

जीवन में विभिन्न प्रकार के पहलू होते हैं। सभी में मन की एकाग्रता की आवश्यकता होती है। कुछ ऐसे भी काम हैं जो इस एकाग्रता के बिना हो ही नहीं सकते। साहित्य-रचना, चित्र खींचना और ईश्वर की आराधना जैसे कार्यों में मन की एकाग्रता की बड़ी जरूरत पड़ती है।

इस एकाग्रता के लिए मन को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न उपाय किये जाते हैं। मन की चंचल गति सहज ही अधिकार में नहीं आती। उस दशा में उपवास करने से अश्रुत लाभ होता है और यह उपवास कई-कई दिनों का किया जाता है।

३—आत्म-संयम—इसका सम्बन्ध भी बहुत कुछ मन के साथ होता है। जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए आत्म-संयम पहली कसौटी है। जिसमें आत्म-संयम का अभाव होता है, वह किसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष नहीं बन सकता।

आत्म-संयम के लिए मन को उज्ज्वल बनाना पड़ता है। मन की गंदगी में आत्म-संयम कभी सम्भव नहीं होता। मन की गन्दगी को सबसे पहले दूर करने की जरूरत पड़ती है। जब मन का मैल धुलकर साफ हो जाता है तो आत्म-संयम का द्वार खुल जाता है। इसलिए जो लोग आत्म-संयम पसन्द करते हैं, उनको चाहिए कि सबसे पहले वे मन के मैल को धोने की कोशिश करें।

यह पहले बताया जा चुका है कि उपवास शरीर के भीतरी मल और मस्तिष्क के विकारों को निकालने का काम करता है। है। इस दशा में आत्म-संयम के प्रेमियों के लिए उपवास अनिवार्य रूप में आवश्यक हो जाता है।

शरीर के बाहरी मैल को धोने के लिए जिस प्रकार साबुन और पानी से नहाने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर के आन्तरिक अवयवों के मैल को धोने के लिए उपवास की जरूरत पड़ती है। मस्तिष्क भी शरीर के भीतरी अंगों में से एक है। मन की चञ्चलता उसकी अनियंत्रित गति है। उसका यह स्वेच्छाचार उस समय तक सम्भव नहीं होता, जब तक उसके मैल और विकार को धोकर उसे स्वच्छ नहीं कर लिया जाता। इसके लिए एकमात्र उपवास का आश्रय लेना पड़ता है।

इस आवश्यकता के कारण ही प्राचीन काल में धार्मिक बातों के साथ उपवास का समन्वय किया गया था। यह पहले लिखा जा चुका है कि संसार के सभी धर्मों में और उसकी सभी जातियों में सदा उपवास का मिश्रण रहा है और आज भी है। इसके सम्बन्ध की कुछ बातों के उल्लेख पहले किये जा चुके हैं। नैतिक

और धार्मिक दृष्टि से आत्म-संयम की बड़ी आवश्यकता है और उसकी पूर्ति के लिए उपवासों की सहायता भिन्न-भिन्न देशों और जातियों में अत्यन्त आवश्यक मानी गयी है।

उपवास का उद्देश्य और आधार एक ही है। लेकिन जल-वायु और सामाजिक परिस्थितियों के कारण विभिन्न जातियों में उसके प्रयोग विभिन्न रूप में पाये जाते हैं। संसार का कोई भी ऐसा देश और उसकी कोई भी ऐसी जाति नहीं है, जिसमें उपवासों का विधान न हो। इस प्रकार के विधानों का आरम्भ अत्यन्त प्राचीन काल में हुआ था और थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ वे आज भी सर्वत्र मौजूद हैं। मिश्र में पुराने जमाने में धार्मिक अवसरों पर उपवास किये जाते थे। यहूदी लोगों में उपवास रहने की प्रथा है और इसके लिए उनके यहाँ दिन निश्चित है। यहूदियों में बड़ी कठोरता के साथ उपवास के विधान को रखा गया है। यह कठोरता यहाँ तक है कि यदि कोई यहूदी निर्धारित दिन और तारीख में उपवास न करे तो उसके विरुद्ध अभियोग चलता है और कड़ा-से-कड़ा दण्ड उसको दिया जाता है। इस दण्ड में मृत्यु तक की सजा देने का विधान यहूदियों में है।

हजरत ईसा ने ईसाई धर्म के साथ-साथ, उपवास के महत्व का प्रचार किया था और वह अपने शिष्यों में प्रायः उपवास के लिए उपदेश किया करते थे। इसके लिए उन्होंने दिन और तारीखें निश्चित की थीं। वह अपने शिष्यों को बताया करते थे कि मन के विकारों का नाश करने के लिए उपवास सबसे उत्तम मार्ग है। वह यह भी कहा करते थे कि आत्म-शुद्धि के लिए कभी भी और किसी भी समय पर छोटे और बड़े उपवास किये जा सकते हैं। इन उपवासों का महत्व उन्होंने सभी के लिए समान रूप में बताया था। हजरत ईसा ने स्वयं एक बार

चालीस दिनों का एक लम्बा उपवास किया था। वह उपवास पर बहुत विश्वास करते थे और कहा करते थे कि अपराधों को धोने के लिए उपवास से अच्छी, दूसरी कोई साधना नहीं है।

यूनान में ईसा की पाँचवीं शताब्दी के पहले सुकरात नाम के एक महात्मा हुये हैं। उन्होंने अपने देश में नैतिक बातों का बड़ा प्रचार किया था। महात्मा सुकरात उपवास के महत्व पर विश्वास करते थे और अपने उपदेशों में लोगों को वह उपवास रहने की शिक्षा देते थे।

रोमन लोगों में भी उपवास रहने की बहुत पुरानी प्रथा थी। लोग अनिवार्य रूप से उपवास करें, इसके लिए उनके यहाँ भी उसे धार्मिक बातों में सम्मिलित किया गया था और इसके लिए साल में महीने और उनकी तारीखें निश्चित थीं। वे लोग ईस्टर से पूर्व के तीन सप्ताहों में शनिवार और रविवार के दिनों को छोड़कर, बाकी दिनों में उपवास रहा करते थे।

इन उपवासों का श्री गणेश अत्यन्त प्राचीन काल से हुआ था और उनको सुदृढ़ बनाने के लिए धार्मिक अवसरों पर उनकी आवश्यकता अनिवार्य रूप में मानी गयी थी। उपवासों के प्रयोग सदा धार्मिक अवसरों पर माने गये थे। योरप में जब पोपों का प्रभाव बढ़ा था तो उन दिनों में उपवासों का प्रचार वहाँ पर अधिक हो गया था और उपवास रहने के लिए लोगों को बड़ी कठोरता के साथ विवश किया जाता था। यहाँ तक कि यदि कोई किसी कारणवश उपवास न रखता था तो उसके विरुद्ध अभियोग चलाया जाता था और उसे दण्ड दिया जाता था। यह दण्ड प्राण-हत्या तक सीमित था।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों में जिस प्रकार उपवासों का प्रचार था, उसका संकेत मैंने संक्षेप में यहाँ पर किया है। इन सब बातों का अर्थ यह है कि प्राचीन काल में आत्म-संयम के लिए उपवास एक मात्र साधन माना गया था। इस साधन की प्रतिष्ठा आज भी संसार के बहुत-से विद्वानों के द्वारा स्वीकार की गयी है। इसके सम्बन्ध में गाँधी जी ने स्वयं बहुत-कुछ लिखा है और उनका प्रयोग भी किया है। एक स्थान पर आत्म-संयम के लिए उपवास की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए आप ने लिखा है :—

"उपवास से मैले मन की शुद्धि नहीं होती। × × मेरा तजुरबा तो मुझे यह बतलाता है कि जिसका मन संयम की ओर बढ़ रहा है, मिताहार और उपवास उसके लिए बड़े मददगार हैं। उनकी मदद के बिना मन के विकारों के दूर होने की सम्भावना नहीं है।"

मनुष्य के प्रत्येक आचरण का सम्बन्ध उसके मन के साथ है और मन को नियंत्रण में लाने के लिए उपवास के प्रयोग किये जाते हैं। उसके बाद जो मन की नियंत्रित अवस्था पैदा होती है, उसे आत्म-संयम कहते हैं। इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्म-संयम के लिए उपवास करना आवश्यक है।

४—अपने आप पर विजय—इस विजय को आत्म-विजय के नाम से भी सम्बोधित किया जा सकता है। मनुष्य की यह सब से बड़ी विजय है। दूसरों पर और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना उतना कठिन नहीं होता, जितना कठिन अपने आप को विजय करना होता है। आत्म-विजयी का स्थान संसार-विजयी से भी ऊँचा होता है। क्योंकि जो अपने आप पर विजय प्राप्त कर लेता है उसके लिए फिर संसार में कोई विजय बाकी नहीं रह जाती।

आत्म-विजयी होना विद्वानों, तपस्वियों और महापुरुषों का काम है। इस विजय का आधार आत्म-संयम है, जिसको ऊपर विस्तार में लिखा जा चुका है। जो आत्म-संयम के द्वारा अपने आप पर अधिकार कर लेता है, वही आत्म-विजयी हो सकता है।

५—नैतिक विजय—संसार में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं। एक शक्ति है, जिसे पशु-बल कहा जाता है और दूसरी शक्ति है, जिसे नैतिक बल का नाम दिया जाता है। संसार के समस्त विद्वानों ने पशु बल के मुकाबिले में नैतिक बल को प्रधानता दी है। इस नैतिक बल को प्राप्त करने के लिए मनोबल की आवश्यकता है और मनोबल आत्म-संयम से उत्पन्न होता है। इस प्रकार उपवास नैतिक बल के लिए आवश्यक है।

६—क्रोध का शमन—हम सब के जीवन में क्रोध एक अनर्थ की जड़ है। इसके कारण प्रायः भयानक दुष्परिणाम होते हैं। इसीलिए समझदारों, विद्वानों और योग्य व्यक्तियों ने सदा क्रोध की निन्दा की है। कुछ विद्वानों ने तो क्रोध को एक प्रकार का रोग माना है और इसके सम्बन्ध में विद्वानों की यह धारणा बिल्कुल सही है। क्रोध का शमन करना ही मनुष्योचित गुणों को प्राप्त करना है।

विद्वानों की परिभाषा में क्रोधी मनुष्य पशुओं में गिना जाता है और यह बात पूर्ण रूप से सही भी है। इसलिए जो क्रोध इतना अपवाद पूर्ण है, उसका शमन ही आवश्यक है। एक आत्म-संयमी अपने क्रोध पर सहज ही विजय प्राप्त करता है। इस दशा में क्रोध को एक रोग समझकर उसके विकारों को मन और मस्तिष्क से निकालने के लिए उपवास बहुत आवश्यक है।

७—आत्म बल—मनुष्य-जीवन के निर्माण में उपवास प्रत्येक अवस्था में सहायक होता है। इसकी सहायता से जो

मनुष्य अपने विकारों का दमन कर लेता है और आत्म संयम की शक्ति को प्राप्त होता है, वही आत्म-बल का अधिकारी है। मनुष्य के जीवन में आत्म-बल सब से बड़ा बल है।

हमारे जीवन में दो प्रकार के विकार पैदा होते हैं—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक विकारों के कारण शरीर में विभिन्न रोगों की उत्पत्ति होती है और मानसिक विकारों के कारण मानसिक रोगों की। मानसिक रोग दो प्रकार के हैं—एक तो मस्तिष्क सम्बन्धी रोग और दूसरे मानसिक विकारों से उत्पन्न होने वाले अपराध।

हमारे जीवन में जितने भी अपराध हैं; वे सब मानसिक विकारों से उत्पन्न होते हैं। इन विकारों की उत्पत्ति अपराधी आदमियों की संगति से होती है और उनके प्रभाव से जब कोई भी मनुष्य एक बार अपराधी हो जाता है तो फिर आसानी के साथ उन अपराधों से उसकी मुक्ति नहीं होती। लेकिन उपवासों से उनको दूर करने में बड़ी सहायता मिलती है।

यहाँ पर यह न समझ लेना चाहिए कि उपवास करने से ही एक चोर अच्छा आदमी हो जायगा। एक डाकू सभ्य पुरुष बन जायगा और एक हत्यारा सदा के लिए अपने इस अपराध से छुटकारा पा जायगा। ऐसा नहीं है। यह मैंने ऊपर भी लिखा है कि जब तक मन निर्मल नहीं होता, उस समय तक उपवास से लाभ नहीं हो सकता और मन को निर्मल बनाने के लिए विचारों के संशोधन की आवश्यकता होती है। जब मन एक बार निर्मल हो जाता है अर्थात् उसका मैल धुल जाता है तो फिर एक अपराधी अपने अपराधों को धो डालने की इच्छा करता है। मन की उस तीव्र अभिलाषा में उपवास उसकी आदतों से अपराधों को निर्मूल करने का काम करते हैं। जब तक अपराधों

के छोड़ने की भावना जाग्रत नहीं होती, उस समय तक विचार गन्दे रहते हैं।

इस गन्दगी के दूर होते ही विचार स्वच्छ हो जाते हैं और उस दशा में अपराधी मनुष्य स्वयं अपने अपराधों को छोड़ने की इच्छा करने लगता है।

यहाँ पर इस बात को मैं और भी स्पष्ट करना चाहती हूँ। एक लड़के की अवस्था उन्नीस-बीस वर्ष की थी। वह निकम्मा था और अकर्मण्य होने के ही कारण वह अपने घर में प्रायः रोज अपमानित होता था।

अपने निकम्मेपन के कारण ही वह किसी मुकदमें में फँस गया और घरवालों की सहायता न करने के कारण उसे एक वर्ष की उस मुकदमें में सजा हो गयी। जेल के जीवन में बहुत-सी कठिनाइयाँ सहने के बाद उसे इस बात का ज्ञान हुआ कि मैं यदि निकम्मा न होता तो मेरे घर के लोग मेरी सहायता करते और मुझे जेल की सजा न मिलती।

जेल से छूटने के बाद कुछ दिनों तक उसकी दशा में परिवर्तन मालूम हुआ। परन्तु उसका निकम्मापन नहीं गया। वह अपने इस दोष को छोड़ना चाहता था, परन्तु किसी काम में उसका मन न लगता। इसलिए वह चिंता में रहने लगा। अपने ऊपर उसे क्रोध मालूम हुआ; और उसने क्रोध की दशा में कई दिनों तक भोजन नहीं किया। यद्यपि उसका यह उपवास नियमित रूप से नहीं हुआ। फिर भी उसका लाभ उसे हुआ और आठवें दिन उसने उपवास तोड़ने के पहले मंजूर किया कि 'मैंने अपने अपराध से छुटकारा पाने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रायश्चित कर लिया है। अब मेरी समझ में आ गया कि अकर्मण्यता एक अपराध है और इस अपराध के समस्त विकार मेरे मन से अब

नष्ट हो गये हैं। इसलिए मुझे आशा है कि मैं भविष्य में अब अपराधी न रहूँगा।'

ऐसा ही हुआ। वह युवक फिर आकर्मण्य नहीं रहा। उसकी आदतों में बहुत सुधार हुआ। अपने इस सुधार के लिए वह प्रायः उपवास किया करता था।

इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख एक विदेशी लेखक ने अपने एक लेख में बड़ा अच्छा किया है। एक मनुष्य अपने लड़कपन से जुआरी था। अपनी इस आदत में उसने बहुत नुकसान उठाया और गरीब हो गया। अपने इस दोष के लिए वह प्रायः रंज किया करता था और वह जानता था कि मेरी समस्त मुसीबतों का कारण मेरी यह जुआ की आदत है।

इस पर भी उसकी जुए की आदत नहीं गयी। वह उस आदत को छोड़ना चाहता था किन्तु वह छोड़ न पाता था। इस लिए वह किसी ऐसे उपाय की खोज में रहने लगा, जिससे उसकी यह बुरी आदत छूट जाय। उससे किसी ने प्रायश्चित करने के लिए कहा और अनशन करने की शिक्षा दी। उसकी समझ में आ गया। पहला ही अनशन उसने पाँच दिनों का किया और उसका बहुत अच्छा प्रभाव उसके ऊपर पड़ा।

उस अनशन को छोड़ने पर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे मालूम हुआ मानों उसके सिर का बोझ अब हल्का हो गया है। उसको प्रोत्साहन मिला। दूसरे महीने में उसने एक सप्ताह का अनशन फिर किया। इससे उसके विवेक में जागृति उत्पन्न हुई। इस प्रकार केवल दो प्रकार के उपवासों के फल से वह अनेक प्रकार के ज्ञानियों की सी बातें करने लगा और उसकी जुए की बुरी आदत सदा के लिए छूट गयी।

इस विषय के एक विद्वान ने यह भी लिखा है कि अपराधी मनोवृत्ति को नष्ट करने के लिए उपवास एक ऐसा प्रायश्चित्त है,

जिससे प्रायश्चित्त करने वाले के विचार निर्मल होते हैं और क्रमशः उपवासों के फलस्वरूप, उसका आत्मा निर्मल और सदा के लिए पवित्र हो जाता है।

वास्तव में उपवास का बहुत ऊँचा महत्व है। यही कारण है कि प्राचीन काल में प्रत्येक तपश्चर्या के लिए उपवास एक प्रधान अंग माना गया था, जिसके वर्णन पहले किये जा चुके हैं।

---

[५]

आहार, मिताहार और उपवास

एक

संसार का प्रत्येक प्राणी भोजन करता है। मनुष्य उनमें से एक है और वह भी भोजन करता है। भोजन से शक्ति और जीवन प्राप्त होता है। यदि भोजन न मिले तो कुछ समय के बाद उसकी मृत्यु हो जाय। इस प्रकार भोजन, अन्य सभी प्राणियों की तरह मनुष्य को भी शक्ति और जीवन देता है और इसके द्वारा वह दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।

यहाँ पर भोजन के सम्बन्ध में प्रायः सभी जरूरी बातें संक्षेप में लिखी जायँगी। भोजन के सम्बन्ध में हमें दो बातें समझ लेनी चाहिए। एक तो यह कि उसके द्वारा, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, शक्ति और जीवन मिलता है और दूसरे यह कि भोजन करने में भूल करने से हमारे शरीर में रोगों की उत्पत्ति भी होती है। इसलिए जो लोग स्वस्थ और नीरोग रहना चाहते हैं, उन

यह समझने की जरूरत है कि वे किस प्रकार भोजन करें जिससे वे रोगों के हमलों से बच सकें। रोग हमारी विपदाओं के कारण होते हैं और उन्हीं के कारण बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, किसी भी समय, असमय मृत्यु होती है।

हमारे जीवन का सब से प्रधान लक्ष्य यह है कि नीरोग रहकर दीर्घ जीवन प्राप्त किया जाय। हमारा सुख, हमारी सुविधा और सलफता हमारे आरोग्यमय जीवन और दीर्घ जीवन पर निर्भर है। जन्म लेने का एक उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए काम करना पड़ता है। मनुष्य जितने दिन अधिक जीवित रहता है, उतना ही वह अधिक काम कर सकता है। उसके जीवन का उद्देश्य काम करना है। जिस दिन उसका शरीर कार्य करने में असमर्थ हो जाता है, प्रकृति के नियमों के अनुसार फिर वह एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। उसका अंत हो जाता है और इसी अंत का नाम मृत्यु है।

ऊपर लिखा गया है कि संसार के सभी प्राणी भोजन करते हैं। इन प्राणियों की विभिन्न जातियाँ हैं और इतनी अधिक जातियाँ हैं कि उनकी कोई संख्या नहीं हो सकती। इन सभी प्राणियों में अनेक प्रकार की विभिन्नतायें हैं और इसीलिए उन सब के एक ही प्रकार के भोजन नहीं हैं। मनुष्य का भी अपना एक अलग भोजन है।

जिसका जो भोजन होता है उसको उसी से पोषण मिलता है। मनुष्य को भी अपने भोजन से वे तत्व प्राप्त होते हैं, जो उसे शक्ति देते हैं और अधिक समय तक जीवित रखते हैं। प्रकृति का ऐसा नियम है।

इस नियम पर चलने से कभी किसी प्राणी को रोगों का शिकार नहीं होना पड़ता। प्रकृति ने सभी प्राणियों को स्वस्थ

और नीरोग रहने के लिए इस प्रकार का ज्ञान दिया है जिससे वह अपने भोजन को पहचान सके और उसे खाकर अधिक समय तक जीवित रह सके। बहुत-से जंगली पशु मांसाहारी हैं। उनका वह भोजन है परन्तु पालतू पशु और दूसरे अनेक प्राणी मांसाहारी नहीं हैं। यहाँ पर इसके विस्तार में मैं नहीं जाना चाहती। इसलिए इस विषय में इतना लिखना ही काफी है कि मनुष्य मांसहारी नहीं है। वह फलाहारी है। फल ही उसका भोजन है। इन फलों की अनेक जातियाँ हैं। उनमें जो अनाज मनुष्य के खाने के काम में आते हैं, वे फलों में ही शामिल हैं। परन्तु सच पूछा जाय तो उन अनाजों की उपयोगिता उस समय तक ही पूर्ण रूप से रहती है, जब तक उनमें ताजगी रहती है। वर्षों रखे रहने के बाद उनकी उपयोगिता बहुत अंशों में नष्ट हो जाती है। इन ताजे अनाजों और दूसरे अनेक प्रकार के फलों के साथ-साथ अनेक प्रकार के शाक भोजन में शामिल हैं। अपने इन भोजनों पर आश्रित रहकर मनुष्य नीरोग रहता है और बहुत समय तक जीवित रहता है। प्रत्येक देश के मनुष्यों का भोजन प्राचीन काल में बहुत कुछ इसी प्रकार का था। इसी लिए उन दिनों में वह नीरोग, शक्तिशाली और दीर्घ-जीवी होता था।

सर्वसाधारण का यह विश्वास है कि प्राचीन काल में मनुष्य आज की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और दीर्घजीवी होता था। जन साधारण का यह विश्वास सही है। लेकिन उन सब को यह नहीं मालूम कि प्राचीन काल में मनुष्य के शक्तिशाली और दीघजीवी होने का कारण क्या था। इस सम्बन्ध में बहुत सी भ्रमात्मक बातें उनकी जानकारी में आगयी है। उन बेचारों को यह जानने का अवसर नहीं मिला कि अपने वास्तविक भोजन को छोड़ देने के कारण मनुष्य का जीवन सभी प्रकार से निर्बल हो

गया है। इस सत्य को न जानकर वह इतना ही जनता है कि सतयुग में लोग दीर्घजीवी होते थे और अब कलियुग चल रहा है। इसलिए मनुष्य की आयु बहुत कम हो गयी है।

इस प्रकार हमारे जीवन का एक अज्ञान हमको नीरोग और दीर्घजीवी नहीं होने देता। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य विवेकशील है और यह विवेक मनुष्य को अच्छे मार्ग की ओर भी ले जाता है और गलत मार्गों की ओर भी। मनुष्य ने आरम्भ काल से लेकर बहुत बड़ी उन्नति की है। इस उन्नति के कारण उसका जीवन महान परिवर्तनों से भरा हुआ है। उन सैकड़ों परिवर्तनों में एक यह भी परिवर्तन है कि वह अपने वास्तविक भोजन के पदार्थों को भूलकर वह भोजनों पर आज आश्रित है जो वास्तव में उसका भोजन नहीं है। इसका परिणाम बढ़ते हुए रोग हैं।

मनुष्य के जीवन में प्राचीन काल की अपेक्षा बहुत से परिवर्तन हुए हैं। वह पहले की अपेक्षा परिश्रमी होने के स्थान पर अधिक विलासी हो गया है। जिस प्रकार का जीवन मनुष्य को शक्ति और स्वास्थ्य देता है, वह जीवन ही बदल गया है और लगातार बदलता जा रहा है। हमारे जीवन का पूर्ण सत्य प्रकृति के नियमों में भरा हुआ है। लेकिन शिक्षा और सभ्यता के विकास में मनुष्य लगातार प्रकृति के नियमों से दूर हुआ है और आज भी होता जा रहा है।

इस प्रकार की दूसरी बातों का यहाँ पर मैं जिक्र न करके केवल भोजन और उससे सम्बन्ध रखने वाली बातों का उल्लेख करना चाहती हूँ। हमारे रोगों का बहुत-कुछ कारण एक तो इस बात पर निर्भर है कि हमको भोजन के सही पदार्थ नहीं मिलते और दूसरा कारण यह है कि एक मनुष्य आवश्यकता

से अधिक भोजन करता है। आरम्भ के पृष्ठों में कुछ इस प्रकार की बातें मैंने लिखी हैं और यहाँ पर उनको थोड़ा-सा विस्तार देकर लिखना इसलिए आवश्यक मालूम हुआ है कि जिससे जन-साधारण भोजन के सम्बन्ध में सभी आवश्यक बातों को स्पष्ट समझ सकें। इसलिए कि हमारी जिन्दगी का यह आवश्यक अंग है।

रोगों की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के भोजन की समस्या दिन पर दिन गम्भीर होती जाती है। यह बात सही है कि हमारे देश में भी शिक्षित मनुष्यों का ध्यान भोजन की ओर गया है और वे इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि हमारी बीमारियों का कारण भोजन के सम्बन्ध में हमारी भूलें हैं। इस प्रकार की अनेक समस्याओं में एक प्रश्न यह भी रहता है कि मनुष्य को कितना भोजन करना चाहिए।

मुझे यह दुख के साथ लिखना पड़ता है कि गरीबों से लेकर अमीरों तक सभी प्रकार के घरों और परिवारों में खाने-पीने के सम्बन्ध में भयानक भूलें होती हैं। मैंने तो इस विषय में सभी प्रकार के घरों में बड़ी सावधानी के साथ समझने की कोशिश की है और मैंने खूब समझा है कि खाने-पीने के सम्बन्ध में कहीं पर भी कोई नियम और व्यवस्था नहीं रहती। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जो परिवार बहुत शिक्षित समझे जाते हैं, इस प्रकार की भूलों में वे भी पीछे नहीं रहते।

यह स्पष्ट है कि हमारे नीरोग अथवा रोगी रहने का प्रमुख कारण हमारा भोजन है। यदि मनुष्य को अपने भोजन का सही ज्ञान हो और वह उसी के अनुसार चले तो फिर उसके रोगी होने का कोई कारण समझ में नहीं आता।

मनुष्य का भोजन क्या होता है? कौन-कौन से पदार्थ उसके भोजन में शामिल हैं और कितनी मात्रा में अपने भोजन

के पदार्थों को खाकर वह नीरोग रह सकता है ? यह सभी बातें प्रत्येक मनुष्य के समझने की हैं।

मैंने ऊपर लिखा है कि जहाँ तक सम्भव हो सके, ताजी तरकारियाँ और फल प्रत्येक मनुष्य को अधिक खाने चाहिए। लेकिन उनकी मात्रा, उनकी आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। यदि इन बातों में भूल की जाती है तो मल-विसर्जन में बाधा पैदा होती है और मल के रुकने से विकारों की उत्पत्ति होती है। इन सबका परिणाम शरीर को रोगी बनाता है।

भोजन में दो बातों का ख्याल रखना बहुत जरूरी है। एक तो यह कि भोजन उतना ही किया जाय, जितने की उसको आवश्यकता हो और दूसरी बात यह कि भोजन के पदार्थ बेमेल न हों। शरीर को पोषण और उसके भीतर के कल-पुरजों को ठीक अवस्था में रखने के लिए शरीर को भोजन मिलना आवश्यक है। परन्तु आवश्यकता से भोजन की मात्रा अधिक होने पर लाभ की अपेक्षा तुरन्त अनिष्ट की सम्भावना होती है। इसलिए इसमें भूल न होनी चाहिए।

मल-विसर्जन का कार्य स्वास्थ्य के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन का मिलना। यदि मल-विसर्जन में बाधा पड़ती है अर्थात् भीतर से सफाई नहीं होती तो शरीर के विषाक्त होने में देर नहीं लगती।

मनुष्य को भोजन करने का और बहुमूल्य भोजन करने का जितना शौक होता है, यदि उतना ही शौक और ज्ञान उसे ठीक रूप से मल-विसर्जन के सम्बन्ध में होता तो कदापि वह बीमार न पड़ता। फेफड़ा, त्वचा, गुरदा और आंतें प्रत्येक समय हमारे शरीर से मल को निकालने का कार्य करती हैं। यदि हमारी भूलों के कारण शरीर के भीतरी इन चारों अंगों के कार्यों

में कोई बाधा नहीं पड़ती तो फिर रोगों के पैदा होने का कोई कारण नहीं होता।

यहाँ पर स्पष्ट रूप से यह समझ लेने की आवश्यकता है कि हमारे शरीर से मल-निकालने का कार्य कौन-कौन से अंग करते हैं और किस प्रकार करते हैं? ऊपर लिखे हुए चारों अङ्गों को जितना ही मनुष्य शक्तिशाली रखता है और उन्हें कमजोर नहीं होने देता, उसके ये चारों अङ्ग उतने ही खूबसूरती के साथ शरीर से मल निकालने के लिए अपने कार्यों का सम्पादन करते हैं।

जब आवश्यकता से अधिक भोजन किया जाता है तो मल-विसर्जन का कार्य करने वाले अङ्ग अपना कार्य ठीक-ठीक नहीं करते। यहाँ पर इसे खूब समझने की जरूरत है। क्योंकि भोजन करने के समय मनुष्य प्रायः अधिक खाने की चेष्टा करता है। कुछ हमारे घरों की परिस्थितियाँ भी इसी प्रकार की हैं। भूख कम होने पर अथवा न होने पर जब कोई घर का मनुष्य बालक अथवा वृद्ध, भोजन कम करता है तो घरों की स्त्रियों को एक बड़ा आश्चर्य होता है। खाने के समय अनेक प्रकार के तर्क से काम लिया जाता है और खाने वाले की इच्छा न होने पर भी उसे दूसरी चीजों के साथ अधिक खिलाने की चेष्टा की जाती है। इसका परिणाम दूसरे ही दिन खराब दिखाई भी देता है। बूढ़ों को तो उसी रात अपच हो जाने के कारण नींद नहीं आती और बच्चों को प्रायः दस्तों की शिकायत हो जाती है। उस दशा में अस्वस्थ होने का कारण कोई नहीं सोचता बल्कि रोग को रोकने के लिए औषधियों के प्रयोग आरम्भ हो जाते हैं।

मैं यह लिख रही थी कि अधिक भोजन कर लेने से पचाने का काम करने वाले अंग अपना कार्य नहीं कर पाते। इस बात को बहुत असानी के साथ समझा जा सकता है। एक आदमी

अगर बीस सेर का बोझ लेकर चलने की शक्ति रखता है, और उसके सिर पर यदि तीस सेर का बोझ रख दिया जाय तो उसकी क्या दशा होगी ? क्या वह आदमी उस बोझ को लेकर बराबर चल सकेगा ? नहीं, ऐसा सम्भव नहीं है।

ठीक यही अवस्था हमारे शरीर की भी है। हमारे शरीर के भीतर जिन अंगों के द्वारा पाचन-क्रिया का कार्य होता है, वे आसानी के साथ जितना भोजन पचा सकते हैं, उतना ही भोजन करना चाहिए। यदि ऐसा न किया गया, और किसी भी दशा में—अपने घर में अथवा पराये घर में भोजन अधिक कर लिया गया तो यह निश्चित है कि पाचन-कार्य ठीक-ठीक न हो सकेगा, और शरीर के भीतर बिना पचा हुआ भोजन रुक कर सड़न पैदा करेगा। इस प्रकार की भूलें शरीर को रोगी बनाती हैं।

इस प्रकार की बातें होने पर प्रायः लोग पूछने लगते हैं कि तो फिर मनुष्य को कितना भोजन करना चाहिए। इसका उत्तर तो बहुत सीधा है। सभी आदमियों के भोजन की मात्रा एक नहीं हो सकती। बहुत मोटी बात यह है कि जो जितना भोजन आसानी से पचा सकता है, उसको उतना भोजन करना चाहिए।

बच्चों, जवानों और बूढ़ों के भोजन की मात्राओं में अंतर होता है। छोटे बच्चों में भोजन को पचाने की शक्ति अधिक होती है। यह शक्ति युवावस्था तक बराबर काम करती है। परन्तु बुढ़ापे का आरम्भ होते ही शरीर के दूसरे अंगों की भाँति पाचन-कार्य करने वाले अंग भी निर्बल पड़ने लगते हैं। इसलिए उस दशा में दो बातों का ख्याल रखना चाहिए। पहला तो यह कि भोजन की मात्रा कम हो और आवश्यकता तथा अवस्था के अनुसार हो और दूसरे यह कि भोजन के पदार्थ ऐसे हों, जिसको

पचाने के लिए शरीर के भीतर अधिक कार्य न करना पड़े। क्योंकि अवस्था जितनी ही अधिक होती जाती है, शरीर की गरमी उतनी ही कम होती है। यदि बुढ़ापे में खाना हजम न होता हो और भूख न लगती हो तो अनाज का आहार बन्द करके केवल ताजी तरकारियाँ और फल खाना चाहिए। यह सब शक्ति और अवस्था के अनुसार होना चाहिए। स्वस्थ रहने के यही उपाय हैं।

आज संसार का जो देश जितना ही शिक्षित है, वह अपने देश के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में उतना ही चिन्तित है। इस प्रकार के देशों में आरोग्य रखने वाले साहित्य की बराबर वृद्धि हो रही है। इसके साथ-साथ इस विषय के विद्वान लगातार नयी-नयी खोजों में लगे हुए हैं।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों के सामने जीवन के कितने भयानक संघर्ष हैं और उन संघर्षों में विजय पाने के लिए यह आवश्यक है कि देश को शक्तिशाली बनाया जाय। इसीलिए जर्मनी, अमेरिका, इंगलैण्ड और रूस में वहाँ के विद्वान इस विषय में बड़ी बुद्धिमानी के साथ अनुसंधान में लगे हैं। इन उन्नत देशों में यह माना जा चुका है कि राष्ट्र को शक्तिशाली बनाये रखने के लिए उसके भोजन के सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने की जरूरत है। वहाँ पर भोजन के दोषों और त्रुटियों के खोजने का काम बड़ी तत्परता के साथ हो रहा है और इस बात की चेष्टा की जा रही है कि मनुष्य के भोजन में उन सभी पदार्थों का मिश्रण किया जाय, जिनके द्वारा मनुष्य की शक्तियों में वृद्धि होती है।

हमारे देश के वक्ता और उपदेशक जब किसी सभा में उपदेश देने खड़े होते हैं तो उनका दृष्टिकोण यह रहता है कि संसार के दूसरे देशों के मुकाबिले में अपने देश को प्रत्येक दृष्टि में

उत्तम साबित करें। यदि इस दृष्टिकोण में सत्य की हत्या होती है तो उसका परिणाम हमारे देशवासियों के लिए महान-घातक होता है।

झूठे अभिमान से कभी कोई लाभ नहीं होता और सब से बड़ी हानि यह होती है कि सच बातों को समझने से हमको वंचित हो जाना पड़ता है। इस प्रकार का रोग इस देश में बहुत है और उसी के फल से जन-साधारण के विचार अधिकांश दूषित हैं। इस विषय में यहाँ पर कुछ अधिक लिखना अनावश्यक मालूम होता है। इसलिए दूसरी बातों को छोड़कर मैं फिर उन्हीं बातों में आ जाना चाहती हूँ, जिनको मैं यहाँ पर लिखने जा रही थी।

जिन देशों के विद्वानों ने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तरह-तरह की खोजें की हैं, उनके देश के स्त्री-पुरुषों को उनकी खोजों से अपार लाभ पहुँचा है। मैं खेद के साथ इस बात को स्वीकार करती हूँ कि भारत में इस प्रकार की चेष्टाओं का एक अभाव है। यहाँ के विद्वान स्वास्थ्य के प्रति बहुत-कुछ अनुदार हैं। उन्होंने इसके सम्बन्ध में ऐसा काम नहीं किया कि जिससे भारत का स्वास्थ्य, अन्य देशों के मुकाबिले में अच्छा स्थान रखता है। मैंने अपनी इन पंक्तियों को समझ-बूझकर और उत्तरदायित्व के साथ लिखा है।

इमानदारी के साथ मैं इस बात को स्वीकार करना चाहती हूँ कि संसार के दूसरे बहुत-से देशों के मुकाबिले में हमारे देश का स्वास्थ्य हीन है। इंगलैण्ड, अमेरिका और जर्मनी के स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य हमारी अपेक्षा बहुत ऊँचा है। इस बात का एक जीवित प्रमाण यह है कि अँगरेजों की औसत आयु ५६ और अमेरिकनों की ६० वर्ष की है। परन्तु भारतवर्ष के निवासियों

की औसत आयु २३ वर्ष से किसी प्रकार अधिक नहीं है। बच्चों की मृत्यु-संख्या दूसरे देशों के मुकाबिले में अधिक है। यहाँ तक कि इंगलैण्ड में प्रतिशत बच्चों की मृत्यु-संख्या ८ से अधिक नहीं है किन्तु हमारे देश में बच्चों की मृत्यु-संख्या ३० प्रतिशत है। हम जीवन-शक्ति में भी दूसरे देशों के मुकाबिले बहुत निर्बल हैं, इस बात का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस देश की इस निर्बलता का मुख्य कारण भोजन के सम्बन्ध में अज्ञान है। सत्य यह है कि इस विषय में हमको जो थोड़ी-बहुत जानकारी है, वह विदेशियों की जानकारी पर बहुत-कुछ आश्रित है।

हम सबको खाने का ज्ञान है। परन्तु भोजन के पदार्थ जो हमारे पेट में पहुँचाते हैं, उनका वहाँ पर क्या होता है, इस बात का हमको ज्ञान नहीं है। भोजन के साथ-साथ हमें इस बात का पूरा ज्ञान होना चाहिए कि मनुष्य जो भोजन करता है, उसकी पाचन-क्रिया का कार्य किस प्रकार होता है।

पाचन का मतलब यह होता है कि मनुष्य जो भोजन करता है, उसको शीघ्र पचने के योग्य बना देना। अर्थात् जो पदार्थ घुलने के योग्य नहीं हैं, उन्हें इस योग्य बना देना कि वे घुलकर द्रवित हो जायँ और शरीर के भीतरी अवयव उनके तत्वों को चूस लें। ऐसा करने के लिए पाचन-क्रिया के द्वारा भोजन की चीजों में रासायनिक परिवर्तन और रूपान्तर होता है। जिस क्रिया के द्वारा यह सब होता है, उसे पाचन-क्रिया कहते हैं।

इस पाचन-क्रिया का कार्य सम्पूर्ण पाक-प्रणाली (Alimentary Canal) में होता है। यह एक नली है, जिसका आरम्भ मुँह से होता है और वह नली गुदा तक चली जाती है। यह नली छै भागों में विभाजित है—

१ मुख, २ कंठ या कंठाशय, ३ अन्ननाली, ४ पेट या आमाशय, ५ छोटी आँतें और ६ बड़ी आँतें। पाचन-क्रिया का कार्य मुख, पेट और छोटी आँतों में होता है।

आहार के साथ ऊपर लिखी हुई सभी बातों का ज्ञान हम सबको उचित रूप में होना चाहिए। उनका ज्ञान न होने के कारण भोजन कर तो लिया जायगा, परन्तु उसका जो लाभ होना चाहिए, वह लाभ न मिल सकेगा। उसके साथ ही स्वास्थ्य का नष्ट होना और जीवन-शक्ति को क्षय करने वाले विषयों की उत्पत्ति आरम्भ हो जायगी। इसीलिए इन बातों पर मैंने यहाँ प्रकाश डाला है और हमारे आहार के साथ उपवास का क्या सम्बन्ध है, इसे आगामी परिच्छेद में लिखने की चेष्टा करूँगी।

---

[६]

आहार, मिताहार और उपवास

दो

प्रत्येक मनुष्य को कितना भोजन करना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है कि जो मनुष्य आसानी के साथ जितना भोजन पचा सकता है, उसको उतना ही भोजन करना चाहिए। इस उद्देश्य से किया गया भोजन मिताहार कहलाता है और इस विचार से जो भोजन करता है, उसे मिताहारी कहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को मिताहारी होने की आवश्यकता है। एक

मनुष्य को छोड़कर दूसरा कोई भी प्राणी नहीं मिलता जो मिता-हार के नियमों का उल्लङ्घन करता हो। मनुष्य इस नियम के विरुद्ध खाने-पीने में आचारण करता है और इसीलिए वह प्रायः बीमार रहकर एवम् अपने जीवन की शक्ति को खोकर असमय संसार से विदा हो जाता है।

यह मिताहार क्या है, इसे यहाँ पर स्पष्ट रूप से बताना है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि आज जो खाना खाया है, उसमें कोई स्वाद नहीं था। किसी के यहाँ निमंत्रण होने पर भोजन करने के बाद या तो लोग बने हुए भोजन के स्वाद की प्रशंसा करेंगे अथवा उसके अभाव में उसकी निन्दा करेंगे। भोजन के साथ इस स्वाद का जो सम्मिश्रण है, हमारे भोजन की सारी खराबियों की जड़ यही है।

इस स्वाद के कई अर्थ हो सकते हैं। परन्तु साधारण तौर पर जिस दृष्टिकोण से स्वाद की प्रशंसा और निंदा की जाती है, वह गलत है। आम तौर पर स्वाद से लोगों का अभिप्राय यह रहता है कि भोजन के बनाने में और विशेषकर तरकारी आदि में मसालों का प्रयोग भली प्रकार किया गया है अथवा नहीं। इसी प्रकार स्वाद के सम्बन्ध में और कई बातें हैं। अगर किसी देश के निवासियों को स्वाद की यही परिभाषा मालूम है, तब तो यह दुख की बात है और मानना पड़ेगा कि उन लोगों को भोजन के सम्बन्ध में सही बातों का ज्ञान नहीं है।

मसालों के प्रयोग से लोगों को एक जायके की अनुभूति होती है, परन्तु उनके द्वारा भोजन के पचने में अनेक बाधायें उत्पन्न होती हैं। मसालों के साथ जो भोजन किया जाता है, वह सहज ही अपाच्य हो जाता है। जो चीजें भोजन में अपाच्य हो सकती हैं अथवा भोजन को अपाच्य बनाती हैं, वे भोजन की चीजें नहीं

हो सकतीं। इसलिए भोजन में मसालों में, उचित और अनुचित प्रयोग पर उसकी प्रशंसा और निन्दा करना, भोजन के सम्बन्ध में अज्ञान का परिचय देना है।

वास्तव में स्वाद का दृष्टिकोण दूसरा ही है। भोजन के पदार्थों का ताजा होना उसके स्वाद में गिना जाता है। भोजन पकने के बाद तुरंत खाना और इस दशा में कि बनी हुई चीजें ठंडी न होने पावें, भोजन की ताजगी में गिनी जाती हैं। खाने की सभी चीजों की ताजगी नष्ट हो जाने पर अथवा बने हुए भोजन के बहुत देर हो जाने पर उसके स्वाद में अन्तर पड़ जाता है। यहाँ तक कि बासी भोजन हानिकारक सिद्ध होता है। जिन मनष्यों को इन बातों का ज्ञान नहीं होता और भोजन की चीजें खरीदने के समय उनकी ताजगी पर ध्यान न देकर सस्ती चीजें खरीदना पसन्द करते हैं, इस प्रकार के लोग स्वयं स्वस्थ रहने और अपने परिवार को स्वस्थ रखने की आशा छोड़ दें।

फलों और तरकारियों को बाजार में खरीदने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि वे बासी न हों। खाने की ये चीजें जितनी ही ताजी होंगी, उतनी ही ये लाभदायक होंगी और इसीलिए बाजार में वे बासी चीजों के मुकाबिले में मँहगी मिलती हैं।

स्वाद के सम्बन्ध में लोगों को मिथ्या विश्वास छोड़ देना चाहिए। उन्हें भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि मसालों के प्रयोग से बनी हुई और तली हुई चीजें कब्ज करती हैं। भोजन के बाद पाक-प्रणाली में पहुँचने पर वे घुलने पर नहीं आतीं। इसीलिए पाचन क्रिया का कार्य करने वाले अवयवों को अधिक कार्य करना पड़ता है और फिर भी वे चीजें अपच की अपच बनी रहती हैं। शरीर के भीतर यहीं से विकारों की उत्पत्ति होती है।

शरीर को आहार का लाभ उसी दशा में होता है, जब यह मिताहार की मात्रा में रहता है। मसालों के प्रयोग से बनी हुई और तली हुई चीजें स्वादिष्ट तो हो जाती हैं। परन्तु उनके कारण मिताहार की सीमा टूट जाती है और मनुष्य स्वाद की झोंक में आवश्यकता से अधिक भोजन करता है। इस दशा में उसका रोगी होना स्वाभाविक हो जाता है।

वास्तव में मनुष्य के खाने की जो चीजें हैं जैसे फल और अनेक प्रकार की तरकारियाँ वे ताजी और कच्ची होने पर ही अधिक लाभ पहुँचाती हैं। जो चीजें कच्ची नहीं खायी जा सकती, उनको उबालकर खाने के योग्य बना लिया जाता है। खाना पकाने का इतना ही उद्देश्य है। इस उद्देश्य को भूलकर दिन-दिन भर खाना पकाना और उसमें विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग करना भोजन के वास्तविक उद्देश्य को मिट्टी में मिला देना है। कच्ची चीजें अथवा साधारणतौर पर उनको उबालकर खाने से अपने आप मनुष्य मिताहारी बना रहता है। उसे मिता-हारी बनने के लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती। लेकिन जब अनेक प्रकार की हानिकारक चीजों के मिश्रण से भोजन पकाकर तैयार किया जाता है तो वह स्वादिष्ट भी हो जाता है और मिताहार के उद्देश्य को नष्ट करके आवश्यकता से अधिक खाने के लिए विवश भी करता है। यहीं से रोगों की सृष्टि होती है।

जिन्दा रहने के लिए आहार की जरूरत है और आहार का लाभ उठाने के लिए मिताहार की आवश्यकता है। इस प्रकार आहार और मिताहार सेहत के दिनों में—नीरोग अवस्था में आवश्यक हैं। लेकिन यदि किसी कारण से कब्ज की शिकायत रहती हो और खाया हुआ भोजन ठीक-ठीक परिपाक न होता हो तो मिताहारी होने की अपेक्षा अल्पाहारी होना अधिक अच्छा है।

कब्ज रहने का अर्थ यह है कि जो भोजन किया जाता है, उसका पाचन-कार्य नहीं हो पाता। इसलिए चिकित्सकों की औषधियों का प्रयोग करके कोष्ठबद्धता को दूर करना अधिक लाभदायक सिद्ध न होगा। औषधियों की सहायता से अस्थायी आराम मिल सकता है। परन्तु वह लाभ अधिक समय न चलेगा। अपच की वह दशा इस बात की सूचना देती है कि जो भोजन किया जाता है, उसको पचा सकने में शरीर के अङ्ग निर्बल हो रहे हैं। इसलिए उसका सब से सीधा मार्ग यह है कि भोजन की मात्रा में कमी की जाय और जो चीजें आसानी के साथ पाक-प्रणाली में पहुँचते ही घुलने लगती हैं, उनको खाने के काम में लाया जाय।

पाचन-क्रिया की निर्बल अवस्था में अल्पाहार ही औषधि है। यदि इस दृष्टिकोण से भोजन किया तो अपच की शिकायत अपने आप दूर हो जायगी। लेकिन अल्पाहार स्वस्थ और सेहत के दिनों में आवश्यक नहीं है।

मिताहार और अल्पाहार में अन्तर है। मिताहारी तो प्रत्येक मनुष्य को होना चाहिए। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक मिताहार सबके लिए आवश्यक है। लेकिन अल्पाहार सबके लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए इस अन्तर को स्पष्ट समझ लेना चाहिए। मिताहारी होने पर भी यदि कब्ज की शिकायत रहे तो उस दशा में अल्पाहार की आवश्यकता होती है। बुढ़ापे की अवस्था में पाचन-क्रिया के अङ्ग शिथिल पड़ जाते हैं। इसलिए उस आयु में प्रायः सभी को भोजन न पचने की शिकायत रहती है। इसलिए वृद्ध मनुष्यों के लिए अल्पाहार सदा लाभदायक होता है।

मेरा अनुभव है कि लोग मिताहार और अल्पाहार का अंतर समझने में भूल करते हैं। इसीलिए मैंने इसको स्पष्ट

करने की कोशिश की है। सेहत और स्वस्थ अवस्था में अल्पाहार लाभदायक नहीं हो सकता। जिस प्रकार आवश्यकता से अधिक भोजन हानिकारक और रोगों की उत्पत्ति का कारण होता है, ठीक उसी प्रकार आवश्यकता से कम भोजन का मिलना शरीर को क्षीण बनाने का कारण हो जाता है।

मिताहार सब को सदा-सर्वदा लाभदायक सिद्ध होता है। इस मिताहार के सम्बन्ध में प्राचीन काल में भी बहुत कुछ प्रशंसा के रूप में लिखा गया है। उसकी प्रशंसा विभिन्न देशों के विद्वानों ने समय-समय पर की है। श्रीमद्‌भगवद् गीता में मिताहारी होने के लिए स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

"वह मनुष्य सदा रोग-शोक से सुरक्षित रहता है जो आहार-विहार में सदा मिताहारी होने की चेष्टा करता है।"

गीता में ऊपर की पंक्तियों के साथ-साथ यह भी लिखा गया है :—

"न तो जरूरत से अधिक खाना अच्छा है और न आवश्यकता से कम। नीरोग रहने के लिए ये दोनों बातें गलत हैं।"

मिताहार के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए गुरु दत्तात्रेय ने कहा है—

"भोजन के सम्बन्ध में मुझे मछली से एक बड़ी अच्छी शिक्षा मिलती है। वह अपनी जीभ के लोभ में पड़कर काँटे के द्वारा पकड़ी जाती है और उसका परिणाम यह होता है कि वह मारी जाती है। इसी प्रकार मनुष्य स्वाद में पड़कर अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है। इसीलिए विद्वान पुरुष जिह्वा के स्वाद का दमन करते हैं। यदि मनुष्य को इस स्वाद का प्रलोभन न रहे तो वह स्वभावतः मिताहारी हो जाता है।"

चिकित्सा के सम्बन्ध में बागभट्ट ने अच्छी-से-अच्छी औषधियों की खोज का काम किया है और भारतीय चिकित्सा

में उनकी खोजों का बहुत ऊँचा स्थान है। एक बार पूछे जाने पर स्वयं बागभट्ट ने कहा था—

"अपनी आवश्यकता को देखकर जो भोजन करता है, और जो खाने की चीजों में किसी स्वाद के चक्कर में नहीं रहा करता, वही वास्तव में नीरोग जीवन प्राप्त करता है।"

स्वामी योगानन्द ने नीरोग रहने के लिए बहुत-सी बातों की खोज की थी और उन्होंने इसी विषय में 'हठयोग' नाम की एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने योगियों को और उन लोगों को, जो नीरोग जीवन बिताना चाहते हैं, मिताहारी रहने के लिए उपदेश किया है।

स्वामी विवेकानन्द एक प्रसिद्ध वक्ता और धर्म प्रचारक थे। उन्होंने कहा है—

"जो मनुष्य आवश्यकता से अधिक भोजन करता है, वह कभी नीरोग जीवन नहीं बिता सकता।"

इसी प्रकार विदेशी विद्वानों के द्वारा भी मिताहार की बहुत बड़ी प्रशंसा सुनने और पढ़ने को मिलती है। सर विलियम टेम्पिल ने आरोग्य और दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए लिखा है—

"जो मनुष्य मिताहारी होता है, वह बड़ा सौभाग्यशाली है। क्योंकि उसके रोगी होने की सम्भावना बहुत कम रह जाती है।"

आरोग्य जीवन के सम्बन्ध में विदुषी मेरी शिंडल के विचार बड़े आदर के साथ पढ़े जाते हैं। उसने मिताहार की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

जो मनुष्य मिताहारी होता है, वह शरीर के सभी कष्टों से बचा रहता है। क्योंकि शरीर की समस्त व्याधियाँ किसी-न-किसी रोग से सम्बन्ध रखती हैं और सभी रोगों की जड़ अनावश्यक भोजन है। इसलिए जो मिताहारी होता है, वह

सदा स्वस्थ रहता है और उसे अपने जीवन में सैकड़ों विपदाओं से सुरक्षित रहने का अवसर मिलता है। जीवन का जो आनन्द एक मिताहारी को होता है, वह किसी पेटू को नहीं होता।"

प्रसिद्ध जोसेफ एडीसन ने इस विषय में समझाते हुए लिखा है—"हमारे जीवन में मिताहार का बहुत अधिक महत्व है। नीरोग रहने के लिए यह एक सफल कुन्जी है और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका लाभ जितना सम्पत्तिशाली उठा सकते हैं, उतना ही गरीब-से-गरीब स्त्री-पुरुष भी।"

एटिकस नामक एक रोमन जलोदर की बीमारी में बहुत समय तक रोगी रहा और जब सभी प्रकार की चिकित्सा कर चुकने के बाद वह सेहत न हो सका तो बहुत दुखी होकर उसने आत्म-हत्या करने के लिए आमरण अनशन आरम्भ किया। अपने उस दीर्घकालीन अनशन के कारण वह मर तो न सका, उसका रोग उसके शरीर से सदा के लिए चला गया। उस समय उसको विश्वास हुआ कि उपवास में कितनी बड़ी शक्ति है।

मिताहार के दो लाभ मनुष्य को प्राप्त होते हैं। एक तो वह रोगों से बचता है और दूसरे वह दीर्घजीवी होता है। अधिक आयु प्राप्त करने के लिए जिन विद्वानों ने अपने जीवन में बहुत-से अनुभव किये हैं, उन्होंने स्वीकार किया है कि दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए मिताहारी होना परमावश्यक है।

मिताहार के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अन्वेषण करते हुए विद्वानों ने लिखा है कि जो मिताहारी होते हैं, उनकी मृत्यु एक सौ वर्ष से पहले कभी नहीं होती, जब कि दूसरे लोग, जो मिताहारी नहीं होते, मुश्किल से साठ वर्ष की आयु तक पहुँचते हैं।

एक विद्वान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—"जो लोग दीर्घजीवी होना चाहते हैं, उनके लिए एक ही उपाय है और वह यह कि वे मिताहारी बनें।"

डाक्टर गोल्डस्मिथ मिताहार की बड़ी प्रशंसा करता था और वह सदा मिताहारी रहता था।

प्रसिद्ध विद्वान प्लूटार्च ने लिखा है कि प्राचीन काल में मिताहारी होने के कारण ही अंगरेज १२० वर्ष तक जीवित रहते थे। और उसके बाद भी उनके शरीर में बुढ़ापे की शिथिलता नहीं आती थी।

प्रसिद्ध डाक्टर बैंजमिन फ्रांकलिन ने मिताहार की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"शरीर के रोगों से बचने के लिए मिताहार सबसे अच्छा उपाय है।"

डाक्टर ईवेंस का कहना है कि २००० दीर्घ जीवन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में अन्वेषण करने से मालूम हुआ है कि उन सबके दीर्घजीवी होने का एकमात्र कारण उनका मिताहार था।

इस प्रकार और भी बहुत से उदाहरण ऐसे लोगों के दिये जा सकते हैं, जिन्होंने मिताहारी होकर अपने जीवन में स्वास्थ्य और दीर्घजीवन को सदा सुरक्षित रखा था।

वास्तव में मिताहार का नियम हम सबके लिए अत्यन्त उपयोगी है। त्योहारों में, दावतों में और इस प्रकार के दूसरे कितने ही अवसरों पर खाने-पीने के नाम पर हम लोग अपने ही साथ एक ऐसा अत्याचार करते हैं, जिसका भयानक फल हमें स्वयं भोगना पड़ता है और यह सब इसलिए होता है कि हमको इन बातों का ज्ञान नहीं है।

चिकित्सा के सिलसिले में मुझे जितने घरों और परिवारों को देखने और उनकी हालतों को समझने का मौका मिला है, उनमें न जाने कितने छोटे बच्चों को केवल इसलिए मैंने मरते देखा है कि उनकी माताओं ने उन अपने प्यारे बच्चों को आवश्यकता से अधिक उनको भोजन दिया था। यदि उन माताओं को इन बातों

का ज्ञान होता तो वे अपने बच्चों के साथ इस प्रकार का अपराध न करतीं और प्राणों से प्यारे उनके बच्चों की अकाल मृत्यु किसी भी दशा में न होती।

प्रत्येक अवस्था में, मनुष्य को भोजन के साथ-साथ मिताहारी होना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर अल्पाहारी होकर उसे अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार की जीवन-चर्या से रोगों के पैदा होने की सम्भावना बहुत कम हो जायगी।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मिताहारी और अल्पाहारी कभी बीमार न पड़ेगा। भोजन के द्वारा एकत्रित होने वाला मल जब कभी भी थोड़ा-थोड़ा रुककर संचित होने लगेगा, तो शरीर के भीतरी अंगों की उस मल से पूरी सफाई न होने की दशा में रोगों के पैदा होने का कारण उत्पन्न हो जायगा। उस दशा में उन विकारों को दूर करने के लिए और शरीर में पैदा होने वाले विष को निकालने के लिए उपवास के सिवा दूसरा और कोई उपाय नहीं है। प्रकृति का नियम भी यही चाहता है। इसलिए नियमित रूप से, जिसके वर्णन आगे चलकर किये जायँगे, उपवास करके शरीर की शुद्धि करनी चाहिए। विषाक्त विकारों से छुटकारा पाने के लिए उपवास के सिवा और कोई दूसरा साधन नहीं है। कब किस मौके पर, किस प्रकार उपवास रहना चाहिए, इस सब बातों को आवश्यकतानुसार यथा स्थान लिखने की चेष्टा की जायगी। जो लोग उपवासों का ज्ञान नहीं रखते और उपवास का आश्रय भी नहीं लेना चाहते, उनको रोगी होने पर औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है। उस दशा में उनके स्वास्थ्य की क्या अवस्था हो जाती है, और औषधियों का क्या प्रभाव पड़ता है, इसे अगले परिच्छेद में लिखा जायगा।

---

[७]

रोगों की अन्य चिकित्सायें

पिछले पृष्ठों में रोगों और उनके मूल कारणों पर बहुत-सी बातें लिखी जा चुकी हैं। साधारण तौर पर रोगों के नाम से सभी प्रकार के लोग परिचित हैं। शरीर में विकार और विष जो उत्पन्न होता है और एकत्रित होता है, जो शरीर के लिए घातक होता है और जिसको शरीर से निकालने के लिए रोगों की उत्पत्ति होती है, उस विकार और विष को शायद ही कुछ लोग जानते हों, हमारे जीवन की परिस्थिति यह है।

लोगों के विश्वास के अनुसार विकारों और विषों के स्थान पर हमें भी रोगों का उल्लेख करना पड़ रहा है। यद्यपि रोग प्रकृति के नियम के अनुसार हमारे साथ भलाई करते हैं और उनका काम शरीर के भीतर संचित विष और विकार का शमन करना है।

इस विष से छुटकारा पाने के लिए प्रकृति के नियमों में उपवास एक मात्र उपाय है। परन्तु उस सत्य से वंचित मनुष्य ने अनेक प्रकार की औषधियों का आश्रय ले रखा है। ऐसा क्यों है और उन औषधियों का प्रभाव शरीर पर क्या पड़ता है यहाँ पर इस विषय पर प्रकाश डाला जायगा।

मैंने पिछले पृष्ठों में लिखा है कि रोगों और विकारों से शरीर को सेहत करने के लिए प्रचीनकाल में जिन चिकित्साओं का आविष्कार हुआ था, वे सब-की-सब अब पुरानी पड़ चुकी हैं। मनुष्य के जीवन में सदा से यह बात चली आ रही है कि आज जिस बात की खोज होती है और जो बात उपयोगी सिद्ध होती है, कुछ समय के बाद नयी खोजों के अनुसार

जीवन के नये सत्य मालूम होते हैं। इसलिए पुराने निर्णय पुराने हो जाते हैं और उनका स्थान नयी खोजें ले लेती हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू में सदा से यह बात चली आ रही है और आगे भी चली जायगी।

चिकित्सा के सम्बन्ध में भी यही हुआ है। आरोग्य प्राप्त करने के लिए और शरीर को स्वस्थ्य बनाये रखने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा और प्राकृतिक उपाय नयी खोज के परिणाम हैं। पुरानी चिकित्सा की अपेक्षा इन नवीन उपायों के द्वारा शरीर को आरोग्य रखने में अथवा बनाने में अधिक सफलता मिलती है। फिर भी पुरानी औषधियों का प्रभाव बहुत बड़ी मात्रा में चल रहा है। इसका कारण है।

लोगों को रोगों के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं है। बीमार पड़ने पर जो डाक्टर अथवा वैद्य उनका इलाज करते हैं, वे रोगी को अथवा उसके परिवार के लोगों को यह नहीं बताते कि रोग पैदा होने का कारण क्या हुआ है।

इस विषय में मेरा अनुभव तो और भी कड़ुवा है। अनेक अवसरों पर दूसरे चिकित्सकों के साथ-साथ मुझे भी रोगी को देखने को मिला है। रोगी और उसके घर के लोग यह चाहते थे कि उनको रोग के सम्बन्ध में बताया जाय। वे जानना चाहते थे कि कौन-सा रोग है और कैसे वह उत्पन्न हुआ है। लेकिन दूसरे चिकित्सकों ने रोगी को यह बताने की कभी जरूरत नहीं समझी। उन अवसरों पर उन्होंने आसानी के साथ यह उत्तर दे दिया—'तुम ये सब जान कर क्या करोगे, तुमको दवा दी जाती है।'

इस उत्तर को सुनकर रोगी और उसके घर के लोग चुप हो गये। मुझे यह उचित नहीं मालूम हुआ, इसलिए मैंने कितने ही ऐसे मौकों पर आये हुए डाक्टरों से कहा कि जब रोगी

हमको और आपको फीस देती है तो उसे रोगों के सम्बन्ध में जानने का अधिकार है। मेरी बात का उत्तर देते हुए उन्होंने तुरन्त कहा—

हम लोगों के पास इतना समय कहाँ है जो हम रोगी को इस प्रकार की बातें समझाने बैठें। केवल इतना ही हो सकता है कि हम लोग रोग बता देते हैं।'

इस दशा में रोगों से अपरिचित रहना और उनकी कोई बात न समझना लोगों के लिए स्वाभाविक है। साधारण तौर पर लोग यही जानते हैं कि बीमार होने पर दवा करना चाहिए। इसलिए वे दवायें करते हैं।

इन औषधियों का उनके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस बात को वे नहीं जानते। दवा करना उनका कार्य है, इसलिए वे उसका आश्रय लेते हैं। औषधियों का प्रयोग करने से उनको कोई कष्ट नहीं होता। साधारण अवस्था में उन्हें कोई परहेज भी नहीं बताया जाता। इसीलिए वे दवायें खाते रहते हैं और खर्च करते रहते हैं। लाभ न होने पर एक चिकित्सक को छोड़कर दूसरे चिकित्सक की दवा करने लगते हैं। वहाँ पर भी लाभ न होने पर किसी तीसरे स्थान पर चले जाते हैं। इस प्रकार वे भटका करते हैं।

रोगों का मूल कारण क्या है और एक मनुष्य क्यों बीमार पड़ा है, इस बात को चिकित्सक न जानते हैं और न जानने की कोशिश करते हैं। उनके द्वारा जो औषधियाँ दी जाती हैं, वे विष के उभार को दबाने की चेष्टा करती हैं। जब शरीर के भीतर विष का संचय अधिक मात्रा में नहीं होता तो औषधियों के प्रयोग से उनका उभार रुक जाता है और कुछ दिनों तक लगातार औषधियों का सेवन करने से रोग की एक प्रकार सेहत हो जाती है।

लेकिन ऐसा करने से शरीर में जो विष मौजूद होता है, वह कहीं चला नहीं जाता। उसका उभार रुक जाता है और कुछ समय के लिए उसका प्रभाव शान्त हो जाता है। किन्तु समय पाकर उस विष का फिर उभार होता है। उस दशा में या तो वही रोग फिर उत्पन्न हो जाता है अथवा दबा हुआ विष किसी दूसरे रोग के उत्पन्न करने का कारण बन जाता है। रोगी फिर दवा करना आरम्भ करता है। यह क्रम बराबर चलता रहता है। एक बार रोगी हो जाने के बाद मनुष्य का छुटकारा फिर रोगों से नहीं होता। वह बार-बार रोगी होता है। उसके शरीर के भीतर विकारों की वृद्धि होती रहती है और लगातार रोगों की भीषणता बढ़ती जाती है। जब औष-धियाँ असमर्थ हो जाती हैं और उनका कोई प्रभाव न पड़ने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है तो लोग कहने लगते हैं—

"क्या किया जाय। सभी प्रकार के उपाय तो किये गये। कोई दवा बाकी न रखी गयी। लेकिन जब भगवान विरुद्ध होता है तो औषधियाँ बेचारी क्या करें।"

जब दवाओं से कोई सफलता नहीं मिलती और रोगी सेहत होने के स्थान पर मृत्यु को प्राप्त होता है तो लोग यह कह-कर विश्वास करते हैं—

'जब मनुष्य की आ जाती है तो फिर कोई उपाय काम नहीं करता। उसकी जिन्दगी ही इतनी ही थी। औषधियाँ तो रोगों का उपाय करती हैं। ईश्वर के साथ किसी का बस नहीं चलता।'

यह दशा है रोगों की और रोगियों की। मैंने तो अपनी इस आयु तक लोगों को इसी प्रकार की बातें कहते हुए देखा है। मैं प्रायः सोचने लगती हूँ कि इस प्रकार के विश्वास किसने पैदा किये और किस प्रकार ये बातें समझ में आयीं।

वास्तव में इस प्रकार की परिस्थितियों में लोगों को देखकर और उनकी बातों को सुनकर बड़ा तरस मालूम होता है। मनुष्य अपने जीवन के सम्बन्ध में कितना अंधकार में है। इस अज्ञान के कारण ही उसे भयानक रोगों का कष्ट भोगना पड़ता है। सही बातों का ज्ञान न होने के कारण मनुष्य की अकाल मृत्यु होती है।

अपनी मूर्खता के कारण मनुष्य किस प्रकार भगवान को दोषी बनाता है, यह देखकर और जानकर बहुत आश्चर्य होता है। बीमार होने के बाद यदि मनुष्य औषधियों का आश्रय न ले और प्रकृति के नियमों के अनुसार विष और विकार को वह निर्मूल होने दे तो सहज ही रोगों की इन विपदाओं से मनुष्य को छुटकारा मिल सकता है।

मनुष्य वास्तव में औषधियों के आश्रय में रहकर उनका दास हो गया है। इस दासता का प्रभाव इतना मजबूत हो चुका है कि उसकी समझ में औषधियों के विरुद्ध कोई दूसरी चीज नहीं आ सकती। इस दासता ने मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर पूरी तौर पर अधिकार कर रखा है। वह आज जिन परिस्थितियों में है, उनमें औषधियों के नाम पर अधिक से अधिक खर्च करना उसे आसान और सही मालूम होता है। लेकिन रोगों से मुक्ति पाने के लिए यदि उसे सही बातें बतायी जाती हैं तो उसकी समझ में नहीं आती। इसका कारण है, औषधियों की दासता। इस दासता से एक बार जो मुक्ति पा जाता है, अर्थात् जब यह समझ में आ जाता है कि रोग क्या है और शरीर के भीतर संचित विष का शमन किस प्रकार होता है तो फिर कोई भी मनुष्य औषधियों के चक्कर में नहीं पड़ता।

औषधियाँ रोगों को दबाने का काम करती हैं। इसलिए शरीर में जो विष संचित रहता है, वह किसी न किसी रूप में उभार

करता रहता है। यदि किसी के शरीर में कोई बड़ा फोड़ा हो जाता है तो वह फोड़ा उस मनुष्य के शरीर में एकत्रित विष की सूचना देता है और उस विष को निकालने का वह कार्य करता है। यदि उसे दबाया न जाय और उसे स्वाभाविक रूप से फूटने का अवसर दिया जाय तो शरीर का विष मवाद के रूप में उस फोड़े के फूट जाने पर निकल जायगा और उसके बाद वह अपने आप सेहत हो जायगा।

ऐसे मौकों पर रोगी और उसके चिकित्सक ऐसी औषधियों का प्रयोग करते हैं, जिससे वह फोड़ा अपने स्थान पर बैठ जाय। कभी-कभी औषधियाँ उसको दबाने में असमर्थ हो जाती हैं और फोड़ा फूटकर संचित मल से बने हुए विष को नियमित रूप से निकालता है। ऐसा होने पर शरीर एक बार शुद्ध हो जाता है। लेकिन यदि औषधियाँ अपना काम कर जाती हैं तो उस समय रोगी को संतोष तो मिल जाता है। परन्तु उसे फोड़े से छुटकारा नहीं मिलता। या तो उसी स्थान पर फोड़ा फिर पैदा होता है अथवा शरीर के किसी दूसरे स्थान पर उसकी उत्पत्ति होती है।

औषधियों का शरीर पर इतना ही प्रभाव नहीं पड़ता। वे स्वयं शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य बन जाती हैं। यह विजातीय द्रव्य, जो औषधियों के द्वारा शरीर में प्रवेश करता है, ठीक उसी प्रकार का विष होता है। जो मल और विकार के संचित होने से विष बना करता है।

यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा के विद्वान औषधियों का सेवन करना किसी भी दशा में उचित नहीं समझते। इसलिए कि एक तो शरीर में विष होता ही है और औषधियाँ स्वयं शरीर के भीतर पहुँच कर एक विषाक्त प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

आम तौर पर लोग प्रायः यह कहा करते हैं कि अधिक औषधियों का प्रयोग करना अच्छा नहीं होता। लेकिन जो एक बार औषधियों के चक्कर में पड़ जाता है, वह सदा के लिए उनकी गुलामी में बँध जाता है सम्पत्तिशालियों के परिवारों में इसको प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। उनके यहाँ खाद्य पदार्थों की भाँति नित्य नियमित रूप से औषधियाँ खाने को दी जाती हैं और इसका नतीजा यह होता है कि उन घरों में बच्चों से लेकर बूढ़े तक—सब के शरीर के भीतर भीषण रूप से विकार और विष का सामञ्जस्य रहता है।

जो लोग सदा औषधियों का सेवन करते हैं, उनके शरीर में विजातीय द्रव्य की तादाद बराबर बढ़ती रहती है। इन विषों को औषधियाँ रोकने का काम करती हैं और वे स्वयं शरीर के भीतर विष बन जाती हैं। इस प्रकार बढ़ते हुए विष के फलस्वरूप एक दिन मृत्यु हो जाती है। औषधियों का शरीर के भीतर अंतिम यह परिणाम होता है।

इस विषय में विस्तार देने की आवश्यकता मैं नहीं समझती। जो लोग नीरोग जीवन बिताना चाहते हैं, उनको ध्यानपूर्वक और सावधानी के साथ इन बातों के समझने का प्रयत्न करना चाहिए। मेरी समझ में नीरोग जीवन बिताना और सदा स्वस्थ रहना जरा भी कठिन नहीं है। इस प्रकार जीवन की समस्त बातें अपने ऊपर निर्भर हैं। यदि इन सब बातों को समझ कर नियमित जीवन बिताने की चेष्टा की जायगी तो फिर रोगी होने अथवा रोगी रहने का कोई कारण नहीं होता।

---

[८]

उपवास कब करना चाहिए ?

उपवास हमारे जीवन का अंग है। जहाँ भोजन है, मिताहार है और अल्पाहार है, वहाँ उपवास भी है। यदि जिन्दा रहने के लिए आहार आवश्यक है तो रोगों से बचने के लिए और नीरोग जीवन बिताने के लिए उपवास भी आवश्यक है।

अब प्रश्न यह है कि उपवास कब करना चाहिए ? क्या आहार की तरह उपवास भी रोज आवश्यक है ? नहीं, ऐसा नहीं है। जिस प्रकार भोजन प्रत्येक समय आवश्यक नहीं होता, उसी प्रकार उपवास भी नित्य आवश्यक नहीं होता। आवश्यकता पड़ने पर भोजन करना चाहिए और आवश्यकता होने पर ही उपवास करना चाहिए। असमय और आवश्यकता न होने पर न तो आहार जरूरी है और न उपवास।

यहाँ पर किसी को भ्रम हो सकता है कि उपवास की तरह क्या आहार की भी आवश्यकता होती है ? यह एक साधारण प्रश्न है। लेकिन बहुत जरूरी है। सचमुच आहार की आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता को भूख कहते हैं। भोजन भूख होने पर ही करना चाहिए। जो लोग बिना भूख के भोजन करते हैं, वही लोग बीमार रहते हैं। गरीब मनुष्य-किसान और मजदूर बीमार कम पड़ते हैं। उनके बीमार न होने का एक ही कारण है कि वे परिश्रम खूब करते हैं और भूख से व्याकुल होने पर वे भोजन करते हैं। उनके ऐसा करने में उनकी बुद्धिमानी को श्रेय नहीं है, बल्कि इस एक अच्छी बात का श्रेय उनकी गरीबी और मजबूरी को है। अपनी इस मजबूरी का वे लाभ उठाते हैं।

जो सम्पत्तिशाली हैं और जिनके जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता, वे प्रायः बीमार रहते हैं। बल्कि सही बात तो यह है कि वे सदा बीमार रहते हैं। उनके इस प्रकार बीमार रहने का कारण केवल इतना ही होता है कि वे परिश्रम नहीं करते और बिना आवश्यकता के अर्थात् बिना भूख के वे भोजन करते हैं।

इस प्रकार के लोग खाने को ही अपनी जिन्दगी का सुख समझते हैं। वे अच्छा खाना चाहते हैं, गरिष्ट खाना, खाना चाहते हैं और जितना अधिक खा सकें, वे उतना खाना चाहते हैं। यही उनके जीवन का सुख है और यही उनका सौभाग्य है। प्रत्येक मनुष्य अधिक-से-अधिक सम्पत्ति इसीलिए चाहता है कि वह अधिक खा सके और उत्तम भोजन कर सकें। उसकी यह समस्त बातें, उसके लिए विभिन्न प्रकार के रोगों का कारण बन जाती हैं और जिसे वह अपना सुख-सौभाग्य समझता है, वह सब उसके लिए दुख और दुर्भाग्य में बदल जाता है। उसके इस दुर्भाग्य का कारण, उसके जीवन का परिश्रम और सम्पत्ति की अधिकता है।

ऊपर की इस विवेचना का इतना ही अर्थ है कि मनुष्य को, जैसा कि अन्य प्राणी करते हैं, आवश्यकता पर भोजन करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उपवास करना चाहिए।

जिनकी समझ में यह बात आ जाय, उनको इसके बाद यह जानने की आवश्यकता है कि उपवास की आवश्यकता क्यों होती है, इसको समझने के बाद ही कोई भी व्यक्ति उपवास कर सकता है और उसका लाभ उठा सकता है।

पिछले पृष्ठों में भली-भाँति लिखा जा चुका है कि हमारे शरीर में जो मल और विकार संचित होता है, उपवास उसको

शरीर से बाहर निकालने का कार्य करता है। उपवास एक प्रकार से शरीर की भीतर की सफाई के लिए आवश्यक होता है। इस सफाई की आवश्यकता प्रत्येक अवस्था में हमको है। यदि हमें एक दिन भी नहाने को नहीं मिलता तो हमारे मन की प्रसन्नता में अन्तर पड़ जाता है और ऐसा मालूम होता है मानो हमारे शरीर पर एक बोझ लदा हुआ है। नहा लेने के बाद तुरन्त उस बोझ से हमें छुटकारा मिल जाता है। अगर कई दिनों तक नहाने को नहीं मिलता तो हमारी हालत और भी खराब हो जाती है।

इस प्रकार का हमारा स्नान शरीर की सफाई और शुद्धता के लिए होता है। शरीर की सफाई दो तरह से होती है। ऊपर से और भीतर से स्नान करना हमारे शरीर की ऊपरी सफाई है। लेकिन इस सफाई से हमारे शरीर के भीतरी अंगों को अधिक लाभ नहीं पहुँचता। इसलिए उनकी सफाई का प्रबन्ध अलग से करना पड़ता है। यों तो शरीर की भीतरी सफाई का कार्य फेफड़ों, त्वचा, गुर्दा और आँतों के द्वारा प्रत्येक समय होता ही रहता है। परन्तु उसके बाद भी जो मल रुक जाता है और उसका विसर्जन नहीं हो पाता, वह धीरे-धीरे एकत्रित होकर विषाक्त रूप धारण करता है। उसको निकालने के लिए और उस संचित विष से शरीर को शुद्ध करने के लिए उपवास की आवश्यकता पड़ती है। इसकी आवश्यकता कब पड़ती है और कितने दिनों के बाद पड़ती है, इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं हो सकता।

उपवास की आवश्यकता सभी लोगों की एक दूसरे से भिन्न होती है। किसी एक आदमी की इस आवश्यकता का भी कोई निश्चित समय नहीं हो सकता। मल और विकार के एकत्रित होने पर उसकी जरूरत पड़ती है।

जिसका शारीरिक विधान जितना ही निर्बल होता है, उसके शरीर में विकार और मल के विसर्जन का कार्य उतना ही कम होता है और जिसका शारीरिक विधान सबल और स्वस्थ होता है, उसके शरीर में यह कार्य बहुत अच्छे तरीके से होता है।

शरीर के विधान की निर्बलता और सबलता को सीधे-सीधे शब्दों में समझने की जरूरत है। जिसका कोठा नित्य नियमित रूप से भली प्रकार साफ होता रहता है, जिसके मल-विसर्जन का कार्य, बिना किसी त्रुटि के स्वाभाविक रूप में होता है और जिसको कोष्टबद्धता की शिकायत कभी नहीं होती इस प्रकार के व्यक्तियों का शारीरिक विधान श्रेष्ठ और उत्तम माना जाता है। उनको उपवास की आवश्यकता जल्दी नहीं पड़ा करती, क्योंकि उनके शरीर के भीतर मल के एकत्रित होने का कार्य बहुत कम होता है।

इसी प्रकार बच्चों, युवकों और बूढ़ों के उपवास के सम्बन्ध में आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न अवसरों पर होती हैं। आवश्यकता पड़ती सबको हैं। किसी को जल्दी और किसी को देर में। शरीर के भीतरी अङ्गों के पुष्ट और स्वस्थ होने पर भी जिनके भोजन का कार्य नियमित रूप में नहीं होता और जो आवश्यकता न होने पर अनावश्यक और अधिक भोजन करते रहते हैं, उनको उपवास की आवश्यकता अधिक होती है।

इतना लिखने के बाद भी कदाचित् यह प्रश्न कि उपवास कब करना चाहिए, हल नहीं होता। मैं स्वयं चाहती हूँ कि इस प्रश्न पर साफ-साफ लिखा जाय और कोई भी उसे पढ़कर उसे भली-भाँति समझ सके।

उपवास कब करना चाहिए, इस पर किसी को पूछने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति ने हमारे जीवन में स्वयं ऐसी व्यवस्था कर दी है कि जिससे शरीर की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में

हमें अपने आप उसकी आवश्यकताओं का ज्ञान होता रहता है। हमें भोजन कब करना चाहिए ? पानी कब पीना चाहिए ? इन प्रश्नों के पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न किसी के बताने की ही आवश्यकता होती है।

शरीर धारण करने वाले प्रत्येक प्राणी को उन सभी बातों का ज्ञान प्रकृति की ओर से होता है, जिनके द्वारा शरीर की रक्षा होती है। भूख और प्यास लगने पर किसी को न पूछना पड़ता है और न बताना पड़ता है। इसी प्रकार की और भी बातें हैं, जिनको समझने के लिए जन्म से ही सब को विवेक मिलता है। यही अवस्था उपवास के सम्बन्ध में भी है।

जिस प्रकार भूख लगने पर भोजन करना चाहिए, प्यास लगने पर जल पीना चाहिए, उसी प्रकार उपवास की आवश्यकता होने पर उपवास करना चाहिए। भूख लगने पर कितना भोजन करना चाहिए, प्यास लगने पर कितना पानी पीना चाहिए और उपवास की आवश्यकता होने पर कब तक और किस प्रकार उपवास करना चाहिए, इन सभी बातों का ज्ञान हमको प्रकृति से मिला है। परन्तु हमने सदा उनकी अवहेलना की है। इस दशा में प्रकृति की ओर जो लक्षण पैदा होते हैं, उनको समझने के योग्य अब मनुष्य नहीं रह गया।

शरीर में जब मल एकत्रित होने लगता है और उसकी सफाई नहीं हो पाती तो प्रकृति के नियमों के अनुसार मल के एकत्रित होने पर शरीर में ऐसे लक्षण उत्पन्न होते हैं जो इस बात की हमें सूचना देते हैं कि शरीर भीतरी अंशों की सफाई करो। इन लक्षणों के उत्पन्न होने पर साधारण अवस्था में अल्पाहार और यदि उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले लक्षण नष्ट नहीं हो जाते तो उपवास करना चाहिए। उपवास एक दिन से लेकर कई-कई दिनों

का होता है। उसके दिनों की संख्या शरीर की आवश्यकता पर निर्भर है। विकारों का संचय जितना कम होता है, उपवास की आवश्यकता उतनी कम पड़ती है और जब मल और विकार का संचय अधिक हो जाता है तो कई-कई दिनों के उपवास की आवश्यकता होती है।

विकारों की किन परिस्थितियों में कितने दिनों का उपवास करना चाहिए और उपवास के साथ-साथ और कौन-कौन-सी बातें होनी चाहिए, इन सब का वर्णन आगे चलकर किया जायगा। यहाँ पर उपवास की आवश्यकता को समझ लेना है और यह जान लेना है कि उपवास हमें कब करना चाहिए। शरीर में नीचे लिखे हुए लक्षण उत्पन्न होने पर समझ लेना चाहिए कि उपवास की आवश्यकता है—

१—शरीर का भारी रहना।

२—स्फूर्ति का अभाव।

३—समस्त शरीर में और विशेषकर हाथों-पैरों में बिना किसी परिश्रम के थकान मालूम होना।

४—थोड़ा-सा भी परिश्रम करने पर थकावट का मालूम होना।

५—काम करने की तबीयत न होना।

६—प्रत्येक समय आलस मालूम होना।

७—मुँह का स्वाद बिगड़ जाना।

८—जिह्वा का साफ न रहना और उसके ऊपर सफेदी आ जाना।

९—सिर का भारी रहना, कभी-कभी पीड़ा करना।

१०—पेट में खुश्की का बढ़ना और मुख का सूखना तथा बार-बार प्यास लगना।

११—खट्टी डकारों का आना।

१२—बिना किसी कारण के बार-बार जमुहाई लेना।

१३—मल-विसर्जन के समय पाखाने का ठीक-ठीक न होना और उसके अन्त में रुके हुए मल का अनुभव होना।

१४—खुलकर भूख न लगना, खाने की चीजों में अरुचि मालूम होना।

१५—भूख के अभाव में अन्यान्य प्रकार की चीजों के खाने की तबीयत होना।

१६—स्वाभाविक रूप से पाखाना न होना और उसकी आवश्यकता को अनुभव करना।

१७—मुँह में बार-बार पानी आना और जी मिचलाना।

१८—थोड़ा-सा भी खा लेने से ऐसा मालूम होना मानो पेट भर गया है।

१९—खा लेने के बाद पेट में भारीपन मालूम होना, लेटने की तबीयत होना।

२०—मुँह से निकलने वाली साँस में दुर्गन्धि आना।

शरीर में ऊपर लिखे हुए लक्षण उत्पन्न होने पर समझ लेना चाहिए कि एकत्रित मल का भार बढ़ रहा है और उसके विकारों का भार आरम्भ हो गया है। इसलिए तुरन्त शरीर के भीतर की सफाई करना चाहिए और उसका मुख्य साधन उपवास है।

आरम्भ के पृष्ठों में मैंने लिखा है कि प्रकृति हमारे शरीर की रक्षा स्वयं करती है। यों तो हमारे भीतरी अंगों की सफाई का कार्य, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, फेफड़ों, त्वचा, गुरदा और आँतों के द्वारा प्रत्येक समय होता ही रहता है। फिर भी जब शरीर में मल एकत्रित होने लगता है और जब

उसका उभार होता है तो प्रकृति अपने नियमों के द्वारा भोजन करने से हमको मना करके अर्थात् उपवास करके संचित मल के निकालने और शरीर की शुद्धि करने के लिए विवश करती है। उस समय प्रकृति बड़ी कठोरता से काम लेती है। वह खाने-पीने के पदार्थों को अरुचिकर बना देती है। खाने का नाम लेते ही तुरन्त अनिच्छा उत्पन्न होती है। किसी प्रकार खाने को जी नहीं चाहता। यहाँ तक कि जब बच्चों को जबरदस्ती, आग्रह-पूर्वक कुछ खिलाया जाता है अथवा दूध पिलाया जाता है तो वे बच्चे खाते-खाते अथवा पीते-पीते उलटी कर देते हैं।

शरीर में उत्पन्न होने वाले ये लक्षण, प्रकृति की ओर से, कठोरता के साथ हमें आदेश देते हैं कि हम किसी प्रकार का भोजन करना बन्द करके अपने शरीर को शुद्ध होने दें। यही अवसर होता है जब किसी भी मनुष्य को, किसी भी आयु के मनुष्य को और किसी भी परिस्थिति में मनुष्य को उपवास करके शरीर को शुद्ध कर लेना चाहिए।

उपवास की आवश्यकता को बताने वाले जो ऊपर लक्षण लिखे गये हैं, उनमें जब कभी एक-दो लक्षण भी पैदा हों तो उसी समय से उपवास की आवश्यकता को समझ लेना चाहिए। उसके प्रति अवहेलना करने पर मल और विकार के एकत्रित होने में वृद्धि होती जाती है और यदि उसके बाद भी शरीर के संशोधन का कार्य तुरन्त न किया गया तो विभिन्न प्रकार के रोगों के आक्रमण आरम्भ हो जाते हैं। उस समय अनेक कठिनाइयों का सामना मनुष्य को करना पड़ता है।

इन लक्षणों के उत्पन्न होने पर अधिकांश संख्या में स्त्री-पुरुषों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उनके खाने-पीने की परिस्थितियाँ ज्यों-की-त्यों चलती रहती हैं। इस दशा में उनके

शरीर में रोगों की उत्पत्ति होने लगती है और धीरे-धीरे वे रोगी बन जाते हैं।

उन लक्षणों के उत्पन्न होने पर कुछ ऐसे भी लोग हैं जो किसी चिकित्सक से औषधि लेकर उन लक्षणों को दबाने का कार्य करते हैं। मानलिया जाय कि एक आदमी को भूख नहीं लगती अथवा प्रायः मिचली आती है। इस प्रकार की बातों को सुनकर कोई भी चिकित्सक औषधि देकर उन पैदा होने वाले लक्षणों को दूर करने की कोशिश करेगा। यह परिस्थिति और भी भयानक हो जाती है।

औषधियों से एक-दो दिन के लिए थोड़ा-बहुत उन लक्षणों में अन्तर पड़ सकता है। लेकिन जब तक इस शरीर के भीतर से एकत्रित मल निकलकर शरीर का संशोधन नहीं हो जाता, उस समय तक विकारों के उत्पातों से [शांति और सेहत नहीं मिल सकती। कुछ समय के लिए औषधियाँ रोक-थाम का काम कर सकती हैं। लेकिन ऐसा करने से एकत्रित मल में वृद्धि होती जायगी और उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले विष के परिणाम स्वरूप किसी भी समय परिस्थितियाँ भयानक हो उठेंगी। उस समय ऐसे भीषण रोगों का प्रादुर्भाव होगा, जिनको सेहत करने में बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

शरीर के भीतर एकत्रित मल की सूचना देने वाले लक्षणों के उत्पन्न होने पर यदि शरीर से उस विष को निकाला नहीं जाता और उत्पन्न होने वाले लक्षणों की उपेक्षा की जाती है तो उसके फलस्वरूप जुकाम, खाँसी, सिर दर्द, बुखार, पेचिश, अतीसार, संग्रहणी जैसे अनेक प्रकार के भीषण रोग उत्पन्न होते हैं और रोगी को महीनों के लिए चारपाई पर लेटकर सेहत की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

रोगों की इस दशा में यदि प्रकृति की अवहेलना की गयी और केवल औषधियों की भरमार हुई तो दो प्रकार के परिणाम सामने आते हैं। एक तो यह है कि यदि रोगी उन रोगों में अच्छा भी हो गया तो उसका शरीर कई प्रकार के विजातीय द्रव्यों से अधिक विषाक्त हो जाता है और निकट भविष्य में पहले की अपेक्षा अधिक भीषण रोगों की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। दूसरा परिणाम यह होता है कि रोगी की दशा लगातार बिगड़ती जाती है। शरीर के भीतर एकत्रित मल विष उत्पन्न करने का काम तो करता ही है, औषधियों के द्वारा शरीर के भीतर एक दूसरा विजातीय द्रव्य पहुँचकर रोगी की मत्यु का कारण बन जाता है।

इन भयंकर परिणामों से बचाने के लिए शरीर के भीतर से विष के निष्कासन का कार्य बिना किसी उपेक्षा के तुरन्त करना चाहिए और उसका एक मात्र उपाय उपवास है। नियमित रूप से उपवास का आश्रय लेने पर स्वाभाविक रूप से शरीर की शुद्धि हो जाती है। उसके बाद उत्पन्न होने वाले समस्त लक्षण अपने आप नष्ट हो जाते हैं। उस दशा में मन की प्रसन्नता बढ़ जाती है। खुलकर भूख लगती है। किसी शारीरिक कष्ट के बाकी रहने का कोई कारण नहीं रह जाता। पाचन-क्रियाओं को उत्तेजना मिलती है। शरीर के प्रत्येक अंग में स्फूर्ति का आविर्भाव होता है और सम्पूर्ण शरीर में एक नवीन जीवन का संचार होता है।

———

[९]

रोग, आयु और उपवास

छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक—सब को उपवास कराये जा सकते हैं। लेकिन इस प्रकार के सभी उपवास एक-से नहीं होते। अवस्था, रोग और शक्ति के अनुसार उपवास का निर्णय करना पड़ता है।

उपवास करने अथवा कराने के पहले रोगी की प्रत्येक बात पर भली प्रकार विचार कर लेना चाहिए। उपवास एक साधना है, जो शरीर के विकारों और दोषों को निकालकर शरीर के संशोधन के लिए की जाती है। इसका निर्णय एकत्रित मल और विकार के ऊपर होना चाहिए। इसके साथ ही रोगी की अवस्था और शक्ति पर भी विचार कर लेना चाहिए। उपवास छोटे भी हो सकते हैं और बड़े भी। उनको सरल बनाकर भी काम में लाया जा सकता है और कठोर उपवासों का भी निर्णय करना पड़ता है। ये सब बातें रोग की अवस्था शक्ति पर निर्भर हैं।

आवश्यकता को देखकर उपवासों का विभाजन इस प्रकार होता है—

१—बच्चों के लिए उपवास।

२—बड़े बच्चों के लिए उपवास।

३—स्त्रियों के लिए उपवास।

४—स्वस्थ पुरुष के लिए उपवास।

५—बूढ़े और निर्बल रोगियों के लिए उपवास।

६—साधारण रोगों और संक्रामक रोगों में उपवास।

७—अधिक निर्बल रोगी के लिए उपवास।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अवस्था के मनुष्यों में उनकी विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार उपवास की व्यवस्था की जाती है।

इस विषय में नीचे लिखी हुई विवेचना को ध्यान में रखना आवश्यकत है—

१—छोटे बच्चों को भी उपवास कराये जाते हैं। परन्तु उनके उपवास बड़ी अवस्था के लोगों की तरह नहीं होते। जो बच्चे माँ का दूध पीते हैं अथवा उसके अभाव में जिनको ऊपर का दूध दिया जाता है, उनको भी शारीरिक कष्ट हुआ करता है।

चिकित्सकों का कहना है कि उन छोटे बच्चों के रोगों को सेहत करना कठिन होता है, जो बोल नहीं सकते और अपने रोगों के सम्बन्ध में कुछ बता नहीं सकते। उनका कहना बहुत अंशों में सही है। इसके साथ एक कठिनाई और है कि सर्वत्र अनुभवी चिकित्सक नहीं मिला करते। उस दशा में रोगी बच्चों के माता-पिता को ओझा लोगों की शरण में जाना पड़ता है और उनकी सहायता बीमार बच्चे के लिये अधिक घातक हो जाती है।

इसके सम्बन्ध में जिनको अनुभव है, वे जानते हैं कि कोई भी ओझा अथवा फूँक डालकर अपने मंत्रों से रोगी बच्चों को देखकर कभी किसी रोग की बात नहीं बताता। वह सहज ही कह देता है कि बच्चे को नजर लगी है माता-पिता उसका विश्वास करके उसी पर आश्रित हो जाते हैं। बच्चों की अकाल मृत्यु का बहुत कुछ यही कारण होता है।

छोटे बच्चों के किसी भी शारीरिक कष्ट में यह समझ लेना चाहिए कि उसके शरीर में विकारों का संचय हुआ है। इसलिए उसका जो भोजन है, उसे बदलने की आवश्यकता है। अनुभव यह बताता है कि जिन बच्चों को ऊपर का दूध पिलाया जाता है, वही बार-बार रोगी होते हैं। इसलिए कि इस देश के घरों में बहुत कम ऐसी मातायें हैं कि जिनको इस बात का ज्ञान है कि छोटे बच्चों को कब, कितनी देर में, कितना दूध और कैसा दूध

देना चाहिए। छोटे बच्चों की बीमारी इन्हीं भूलों के साथ आरम्भ होती है। जो बच्चे अपनी माताओं के दूध पर आश्रित रहते हैं, उनको भी आवश्यकता से अधिक दूध पीने को मिलता है। बच्चों की बीमारी के यही दो कारण हैं।

उनको प्रायः पेट की बीमारियाँ हो जाती हैं और अनावश्यक मात्रा में दूध पीने से उनको अपच हो जाता है। उनको पाखाना साफ नहीं होता। इन लक्षणों के आरम्भ होते ही यदि बच्चे को दूध पिलाने की मात्रा कम कर दी जाय अथवा दूध पिलाना बिल्कुल रोक दिया जाय, तो साधारण विकारों में बिना किसी औषधि के वे दो ही दिनों में अच्छे हो जायँगे। छोटे बच्चों के लिए इतना ही उपवास काफी होता है। लेकिन दूध बन्दकर देने की अवस्था में भी बच्चे को जल बार-बार पिलाना चाहिए। यदि दूध के स्थान पर उनको पानी पिलाया जाय और निडर होकर पिलाया जाय तो बच्चों की सेहत बहुत जल्दी हो जाती है। एक या दो दिनों का उपवास कराने पर यदि बच्चे को पाखाना न हो तो उसे अन्य उपचारों से पाखाना कराने की चेष्टा करना चाहिए।

इस प्रकार छोटे बच्चों के साधारण रोग अपने आप सेहत हो जाते हैं। खाँसी, जुकाम, अफरा, पेट की पीड़ा, कब्जियत और साधारण ज्वर को सेहत करने के लिए किसी दूसरे उपाय की आवश्यकता उनके लिए नहीं होती। यदि ऐसा किया जाय तो साधारण बातों में छोटे-छोटे बच्चे सहज ही अच्छे हो जाते हैं।

आरम्भ में लापरवाही करने से जब बच्चों के शरीर के भीतर विकारों का संचय अधिक हो जाता है और उनके खाने-पीने की चीजों में कोई सुधार नहीं किया जाता तो वे बीमार पड़ जाते हैं और औषधियों के कारण प्रायः उनके रोग विस्तार

में पहुँच जाते हैं। अरसे तक उनको पतले दस्त आते हैं। उनके पेट में पीड़ा रहती है। इसके साथ-साथ उन्हें बुखार भी आने लगता है। इस प्रकार की कई बीमारियाँ उनकी साथ-साथ चलने लगती हैं और बच्चे बहुत दिनों तक बीमार पड़े रहते हैं।

इस प्रकार के रोगी बच्चों को तुरन्त सेहत करने के लिए बहुत आसानी के साथ उनको उपवास कराया जा सकता है और उसकी विधि यह है कि उन्हें जो कुछ भी खाने और पीने को दिया जाता है, उसे बिलकुल रोक दिया जाय और उसके स्थान पर उनको फलों का रस दिया जाय। यह क्रम उस समय तक बराबर जारी रहे, जब तक वे पूर्ण रूप से सेहत न हो जायँ। उनके अच्छे हो जाने पर भी फलों का रस एक साथ न बंद किया जाय और उनको उनका पुराना भोजन थोड़ा-थोड़ा कर के देना आरम्भ किया जाय। छोटे बच्चों के उपवास इसी प्रकार के होते हैं। उनके इन उपवास के दिनों में इस बात का पूरी तौर पर ध्यान रखा जाय कि उनके इन उपवास के दिनों में उनके पेट की सफाई होती रहे। अर्थात् उन्हें पाखाना रोज होना चाहिए। अपने आप अच्छी तरह से पाखाना न होने पर उनको अपर उपचारों से नित्य पाखाना कराना चाहिए, उस समय तक, जब तक उनका उपवास चलता रहे।

२—बड़े बच्चों को उपवास कराने का नियम भी बहुत-कुछ इसी प्रकार का है। बच्चे छोटे हों अथवा बड़े, रोगों की उत्पत्ति एक-सी होती है और उनके लक्षण भी बहुत-कुछ मिलते जुलते हैं। रोगों में भी कोई अन्तर नहीं होता। इसलिए उनके रोगी होते ही अथवा रोगों के लक्षण मालूम होते ही उनका खाना तुरन्त रोक देना चाहिए और इसके सम्बन्ध में कठोरता से काम लेना चहिए।

यह बात सही है कि इस प्रकार के बच्चों के उपवास कराने का कार्य, छोटे बच्चों की अपेक्षा कठिन होता है। यह तो निश्चित है कि शरीर में कोई भी रोग उसी दशा में पैदा होता है, जब शरीर के भीतर मल का संचय होता है। उस समय भूख अपने आप कम हो जाती है अथवा बिलकुल बन्द हो जाती है। छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक—सब की अवस्था इसके सम्बन्ध में एक-सी होती है। वास्तव में भूख किसी को नहीं लगती। परन्तु खाने-पीने के लिए चिल्लाते सभी हैं। छोटे बच्चे रोते हैं, बड़े बच्चे खाने-पीने के लिए अपनी माताओं को परेशान करते हैं और वयस्क भी इसी प्रकार की दशा में देखे जाते हैं।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि उनको भूख लगी है। विकारों के एकत्रित होने और रोगी होने पर भी जो भूख का अनुभव होता है, वह आदत की भूख होती है। जो लोग उपवास करते रहते हैं, उनको इसका भली प्रकार अनुभव होता है। उपवास आरम्भ करने पर पहले दिन क्षुधा तीव्र मालूम होती है। दूसरे दिन कुछ हलकी हो जाती है और तीसरे दिन झूठी भूख बिलकुल नष्ट हो जाती है। उसके बाद सच्ची भूख उस समय पैदा होती है, जब शरीर के भीतर विकार नष्ट हो जाते हैं और शरीर एकत्रित मल से शुद्ध हो जाता है।

सभी प्रकार के बच्चों को ज्वर, पेचिश, अतिसार, ज्वरा-तिसार और संग्रहणी जैसे रोगों में अन्न और दूध बिलकुल रोक कर उपवास कराना चाहिए और ताजा जल बार-बार पीने को देना चाहिए। आरम्भ में एक-दो दिनों के बाद छोटे बच्चों को फलों का रस थोड़ी मात्रा में देना आरम्भ कर देना चाहिए। लेकिन पानी पिलाने में कोई कमी न होना

चाहिए। क्योंकि उपवास की अवस्था में जो पानी पिलाया जाता है, वह शरीर से मल और विकारों को निकालने में पूरी सहायता करता है। बड़े बच्चों को रोग की तीव्रता में उस समय तक अन्न की चीजें और दूध न देना चाहिए, जब तक रोग की दशा में पूर्ण रूप से सुधार न हो जाय। रोग की तेजी बहुत-कुछ कम हो जाने पर आवश्यकता के अनुसार फलों का रस दिया जा सकता है। इस प्रकार का नियम उपवास में शामिल है। इसलिए इसको कभी न भूलना चाहिए कि उपवास में नित्य नियमित रूप से पेट की सफाई होना चाहिए। यदि पाखाना नहीं होता तो एनिमा देकर आवश्यकता के अनुसार एक बार, दो बार अथवा इससे अधिक बार पाखाना कराना चाहिए। एनिमा देने का तरीका 'उपवास करने के नियम' नामक परिच्छेद में लिखा गया है।

३—वयस्क स्त्रियों और पुरुषों को उनकी आवश्यकता के अनुसार उपवास करना चाहिए। यह आवश्यकता उनके शरीर में एकत्रित मल और विकारों पर निर्भर है। मल की साधारण अवस्था में एक या दो दिनों के उपवास से भी काम चल जाता है। परन्तु जिसके शरीर में बहुत दिनों का पुराना मल एकत्रित होता है, तो उसको निकालने के लिए और पूर्ण रूप से शरीर की शुद्धि करने के लिए कई-कई दिनों के उपवास की जरूरत पड़ती है।

साधारण रोगों की अपेक्षा पुराने रोगों में लम्बे उपवासों से ही पूरा लाभ होता है। यदि उनमें एक, दो या तीन दिनों का साधारण उपवास किया गया तो पुराने रोगों में कोई लाभ की आशा नहीं होती। इसलिए रोगों की अवस्था का विचार करके उपवास का निर्णय करना चाहिए।

यहाँ पर यह बता देना अत्यन्त आवश्यक है कि लम्बे उपवास बड़ी सावधानी के साथ किये जाते हैं। साधारण तौर पर दो-तीन दिनों के उपवास में कोई डर की बात नहीं होती। लेकिन कई-कई दिनों के जो लम्बे उपवास होते हैं, उनमें बहुत नियमित जीवन बिताना पड़ता है। इसलिए इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि लम्बे उपवास किसी अच्छे जानकार की देख-रेख में ही आरम्भ किये जायँ।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का जीवन कोमल होता है। परन्तु उनकी इस कोमलता का प्रभाव उनके उपवास में नहीं पड़ता। अनुभवी लोगों को भली-भाँति यह मालूम है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक उपवास कर सकती हैं और उपवासों का लाभ उठा सकती हैं। लेकिन उसी अवस्था में जबकि वे उपवास के महत्व को समझती हों और उपवासों के सम्बन्ध में वे पूरी जानकारी रखती हों।

४—अधिक बूढ़े और निर्बल व्यक्तियों को भी उपवास कराये जा सकते हैं। क्योंकि शरीर के आंतरिक विकारों और रोगों को निर्मूल करने के लिए उपवास से अधिक विश्वस्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

इन बूढ़ों और निर्बल रोगियों के साथ उपवास के वही नियम काम करते हैं, जो वयस्क और स्वस्थ स्त्री-पुरुषों के साथ। इस प्रकार की सभी बातें 'उपवास करने के नियम' शीर्षक परिच्छेद में विस्तार के साथ बतायी गयी हैं। उस परिच्छेद की सभी बातों को सावधानी के साथ पढ़कर उपवास से लाभ उठाने की चेष्टा करनी चाहिए।

स्पष्ट बात यह है कि ऐसा कोई भी रोग साधारण और असाधारण नहीं है, जिसमें उपवास का तुरंत प्रभाव न पड़ता

हो। प्रकृति का यह विधान अत्यन्त सरल भी है और न समझने वालों के लिए कठोर और भयानक भी है।

ऐसे बहुत से रोग हैं जो संक्रामक माने जाते हैं; वे दीर्घ-कालीन और भयानक रोग उपवास के द्वारा सफलतापूर्वक किस प्रकार सेहत किये जाते हैं, उनके विस्तारपूर्वक वर्णन 'संक्रामक रोग और उपवास' नाम के परिच्छेद में लिखे गये उपवास के साथ कई प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। इसलिए उन सब का जानना आवश्यक है। इस विषय के प्रेमियों को उपवास के सम्बन्ध में सभी बातों के जानने और उनके नियमों पर चलने की चेष्टा करनी चाहिए।

---

[१०]

उपवास के दिनों का जीवन

इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवित रहने के लिए भोजन जितना जरूरी है, शरीर-शुद्धि के लिए उपवास उतना ही आवश्यक है। इस सत्य को वही लोग समझते हैं, जिन्हें उसके समझने का अवसर मिला है और जिन्होंने उसका लाभ उठाया है।

जो लोग उपवास की वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं; जो लोग इस बात को नहीं जानते कि शरीर और मस्तिष्क में विकारों के भर जाने पर उपवास से किस प्रकार लाभ होता है, उनकी बातें कुछ और हैं।

चिकित्सा के सिलसिले में मुझे समाज के सभी प्रकार के व्यक्तियों के विचारों को जानने का बहुत मौका मिला है। इसलिए

अपने उस अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकती हूँ कि समाज में अधिक संख्या में स्त्री-पुरुषों को उपवास के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं है।

यद्यपि हमारे सामाजिक जीवन में व्रतों का बहुत बड़ा स्थान है और हमारे यहाँ सभी प्रकार के लोग, प्रायः बच्चों से लेकर बूढ़ों तक प्रसन्नता के साथ व्रत रहना अपना धर्म समझते हैं। व्रत और उपवास एक ही चीज है। व्रत के माने ही उपवास के हैं। परन्तु मुझे तो पढ़े-लिखे लोगों की बातें सुनने का मौका मिला है। उनका विश्वास है कि व्रत जीवन के अधार्मिक कार्यों की शांति के लिए रखे जाते हैं। उनका कहना है कि व्रतों से पापों का क्षय होता है। इस बीसवीं शताब्दी में भी, जब मनुष्य जाति बहुत-कुछ सत्य के निकट पहुँच गयी है, हमारे यहाँ लोगों को जीवन की छोटी-छोटी बातों का ज्ञान नहीं है। इसका अर्थ यह है कि हमारा देश विकास के मार्ग में बहुत पीछे है।

यहाँ पर इन बातों के विस्तार में जानने की जरूरत नहीं है। सीधी बात यह है कि सर्वसाधारण को उपवास का ज्ञान नहीं है। इसीलिए वे उपवास के नाम पर घबराते हैं। किसी बड़ी बीमारी में अथवा तीव्र ज्वर में जब एक चिकित्सक रोगी को खाना देने से रोक देता है तो उस समय घर के लोग अच्छा कह देते हैं, परन्तु बाद में वे और विशेषकर उनके घरों की स्त्रियाँ इस बात को सहज ही मन्जूर नहीं करतीं कि खाना न दिया जाय। अगर पुरुषों की समझ में आ भी जाता है तो स्त्रियाँ उसको नहीं समझतीं। खाना देना और न देना आम तौर पर घर की स्त्रियों के हाथों में रहता है। मैंने तो देखा है कि मेरे बहुत समझाने पर भी और घर के पुरुषों के मान लेने पर भी स्त्रियों ने छिपकर रोगी को खाना खिलाया है।

स्त्रियों का यह अपराध कभी छिप नहीं सका। इसलिए कि खाना देते ही रोगी की दशा भयानक हो जाती है। ऐसे मौकों पर मुझे यह भी मालूम हुआ है कि रोगी को खाने की इच्छा नहीं थी, परन्तु स्त्रियों ने खाना इसलिए खिला दिया कि लंघन करना अच्छा नहीं होता।

इस प्रकार मूर्खतापूर्ण विश्वास समाज में बहुत अधिक भरे हैं। मैं उन सबके सम्बन्ध में अधिक कुछ न लिखकर, संक्षेप में इतना ही बताना चाहती हूँ कि लोगों में उपवास के प्रति अच्छी धारणा नहीं है।

इस प्रकार की बातें तो लोगों की उस समय की हैं, जब एक रोगी कई दिनों से तीव्र ज्वर में होता है और चिकित्सक को मजबूर होकर भोजन बंद करना पड़ता है। लेकिन हमारी आवश्यकता तो यह है कि रोगों के आक्रमण होने के पूर्व जब शरीर में मल और विकारों के संचित होने की अनुभूति हमें हो, उसी समय हमें उपवास करना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि प्रायः सभी लोग उपवास से घबराते हैं। उनकी घबराहट का इतना ही कारण है कि बिना खाये रहा कैसे जायगा? आवश्यकता पड़ने पर जब मैंने अपने रोगियों से उपवास करने की बातें कही हैं और मैंने उनको साफ बताया है कि उपवास न करने से आप के रोग अच्छे हो नहीं सकते तो उन्होंने मेरी बातों को सुनते ही तुरंत उत्तर दे दिया है कि उपवास तो हमने कभी किया ही नहीं है।

कुछ ऐसे भी रोगी मिलते हैं जो प्रसन्नता पूर्वक उपवास की बात को स्वीकार कर लेते हैं और उसके नियमों का पालन करते हैं। वास्तव में इससे डरने वालों को इसका ज्ञान नहीं होता। उपवास से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होता और साधारण अवस्था में शरीर

और मस्तिष्क की शुद्धि के लिए जो उपवास किये जाते हैं, उनसे उपवास करने वाले के किसी कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती।

इस सत्य को न जानने के कारण उपवास के प्रति लोगों में घबराहट होती है। यदि किसी को साधारण तौर पर चार या पाँच दिनों का उपवास करने को बताया गया तो वह यह सोच कर घबराता है कि चार-पाँच दिनों तक बिना खाये कैसे रहा जायगा? उसकी इस घबराहट का कारण केवल इतना ही है कि उसको इसके सम्बध में कुछ ज्ञान नहीं है। मैंने तो यह भी देखा है कि एक बार समझ लेने और अनुभव कर लेने पर सारा भ्रम दूर हो जाता है और फिर कभी भय नहीं मालूम होता।

मनुष्य के समस्त भय का कारण उसका अज्ञान है। वह सभी बातों में अपनी आदतों का गुलाम है। जिस आदत में मनुष्य को रहना पड़ता है, वही आदत उसे अनुकूल हो जाती है और उसके विरुद्ध सभी बातें उसे कष्ट-साध्य मालूम होती हैं। इसको समझने के लिए हमारे जीवन के सैकड़ों उदाहरण हैं—

१—जो लोग बीड़ी और सिगरेट नहीं पीते, यदि उनको बीड़ी और सिगरेट पिलाई जाय, तो वे किसी प्रकार स्वीकार न करेंगे। उसमें उनको बड़ा कष्ट मालूम होगा और कष्ट का मालूम होना वास्तव में सही भी है। लेकिन जो लोग बीड़ी और सिगरेट पीने के कुछ दिनों से अभ्यासी हो गये हैं, यदि उनको इनका पीना रोका जाय तो पीने वालों को बहुत मुश्किल मालूम होगी। बीड़ी और सिगरेट के पीने वाले, बिना पिये कैसे रह सकेंगे, यही उनका विश्वास होता है।

ठीक यही बात हमें सैकड़ों विषयों में दिखायी देती है। लोग तम्बाकू पीने, अफीम खाने और मदिरा पीने के अभ्यासी हो जाते हैं। इनमें कोई भी वस्तु न तो स्वादिष्ट होती है और न किसी दृष्टि से भी लाभदायक होती है। फिर भी उनके पीने वालों को यदि पीने से मना किया जाय तो पीने वालों के सामने बड़ी कठिनाई पैदा हो जायगी।

इस प्रकार की और भी बहुत-सी बातें हैं। लोग बेकार रहने के आदी हो जाते हैं, जुआ खेलने के अभ्यासी हो जाते हैं, गंदे आदमियों की संगति में रहने की एक आदत पड़ जाती है। झूठ बोलने, किसी के साथ छल करने, किसी को धोखा देने और किसी की बुराई करने की भी एक आदत होती है। चोरी करना, डाका डालना, किसी प्रकार का दुराचार करना भी मनुष्य की आदतों में ही शामिल है। कोई भी मनुष्य इन सब बातों को अच्छा नहीं कह सकता। यहाँ तक कि जो लोग इन के अभ्यासी हैं, वे भी इन बातों को अच्छा नहीं कहते। परन्तु उनको यदि इस प्रकार के आचरणों से रोका जाय तो कोई भी मानने के लिए तैयार न होगा।

इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरणों से साफ जाहिर है कि मनुष्य अपनी आदतों का दास होता है। जिसकी गलत आदतें पड़ जाती हैं, उसे गलत आदतें ही अच्छी मालूम होती हैं और जो लोग अच्छी बातों के अभ्यासी होते हैं, उन्हें अच्छी बातें अच्छी मालूम होती हैं।

उपवास के सम्बन्ध में भी यही बात है। यह तो मानी हुई बात है कि प्रत्येक प्राणी भोजन करता है। मनुष्य भी भोजन करता है। वह भोजन के बिना अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। लेकिन उपवास में वह अधिक दिनों तक जीवित

रह सकता है। उपवास में जीवित रहने के लिए उसके दिनों की कोई संख्या नहीं हो सकती। उपवास पेट में संचित मल को निकालने के लिए किया जाता है। यदि मल का संचय शरीर के भीतर नहीं है तो बिना भोजन दो दिन और तीन दिन तक रहना भी कठिन हो जायगा। लेकिन यदि मल का संचय पुराना है और अधिक है तो पन्द्रह दिनों तक, बीस दिनों तक और चालीस दिनों तक भी मनुष्य जीवित रह सकता है। उपवास के दिनों में भोजन के स्थान पर एकत्रित मल पचा करता है और भोजन की आवश्यकता नहीं पड़ा करती।

यह एकत्रित मल जब तक शरीर से पूरी तौर पर निकल नहीं जाता, भूख नहीं लगा करती। इसलिए उपवास के दिनों में अगर पेट के भीतर खराबियाँ होती हैं तो भूख लगने का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता। यह भूख उस समय तक न लगना चाहिए, जब तक पेट के भीतर मल रहता है। फिर भी उपवास आरम्भ करते ही पहले ही दिन से जो लोग भूख अनुभव करते हैं और उसकी पीड़ा से अपने को पीड़ित समझते हैं, उनको स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिए कि उनकी यह भूख, उनकी आदतों के कारण मालूम होती है। प्रत्येक आदत की एक भूख होती है। जो सिनेमा देखने के अभ्यासी हैं, उनको सिनेमा देखने की भूख लगती है। जो लोग जुआ खेलने की आदत रखते हैं, उनको उसकी भूख लगती है। इस प्रकार प्रत्येक आदत की एक भूख होती है। इस प्रकार सैकड़ों आदतों में भूख लगने की भी एक आदत होती है। विचारपूर्वक अगर समझने की चेष्टा की जाय तो कोई भी इसे स्वीकार करेगा कि हर एक आदत की भूख होती है। इसी प्रकार भूख न होने पर भी, शरीर के भीतर मल के एकत्रित होने के दिनों में भूख लगती है और वह इसलिए नहीं लगती

कि शरीर को भोजन की आवश्यकता है, बल्कि इसलिए भूख लगती है कि भोजन करने के हम लोग आदी हैं।

भूख हमारे सामने दो प्रकार की है। यह पहले लिखा जा चुका है कि शरीर में जब मल इकट्ठा होता है तो भूख अपने आप बन्द हो जाती है। जिनके शरीर की यह दशा होती है, वे प्रायः कहा करते हैं, "आजकल हमें भूख नहीं लगती—खाने की इच्छा नहीं होती और जब हम खाने बैठते हैं तो खाने-पीने की चीजों में रुचि नहीं मालूम होती।"

लोगों का ऐसा कहना सही होता है। जो प्रकृति हमें नीरोग रखना चाहती है, वह चाहती है कि मल और विकार के संचय की अवस्था में हम भोजन न करें। और उस दशा में हमारे भोजन को रोकने के लिए वह अनेक प्रकार से प्रयत्न करती है। पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि उपवास करने की आवश्यकता को बताने के लिए जो बहुत-से लक्षण हमारे शरीर में उत्पन्न होते हैं, वे शरीर के भीतर एकत्रित मल की हमें सूचना देते हैं।

यदि प्रकृति के इस संकेत की हम उपेक्षा नहीं करते तो प्रकृति की कोशिश वहाँ से समाप्त नहीं हो जाती। हमारे शरीर में अनेक प्रकार के उत्पात, उपद्रव पैदा होते हैं जो खाना बन्द करने के लिए हमें विवश करते हैं और उन दिनों में वे सभी उपद्रव शरीर के भीतर से मल निकालने की चेष्टा करते हैं। इन उत्पातों और उपद्रवों को विभिन्न प्रकार के रोगों के नाम से पुकारा जाता है।

उपवास के दिनों में, यदि कोई बड़ी बीमारी नहीं होती तो मनुष्य के जीवन में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसका जीवन ज्यों का त्यों चला करता है। उसके सभी कार्य बराबर होते रहते हैं और कोई अन्तर नहीं मालूम होता।

कुछ लोगों का यह भी विश्वास है कि भोजन न करने की दशा में कोई भी कार्य नहीं होता। इस प्रकार के विश्वास करने वालों को स्पष्ट रूप से जानने की आवश्यकता है कि उपवास के दिनों में कोई भी कार्य बन्द नहीं होता बल्कि पहले की अपेक्षा मनुष्य इन दिनों में अपने सभी प्रकार के कामों को भली प्रकार करता रहता है।

मल की संचित अवस्था में जब उपवास आरम्भ किया जाता है तो पहले दिन कुछ उत्पात खड़े होते हैं। हाथों और पैरों में थकान मालूम होने लगती है। बिना अधिक चले-फिरे भी पैरों में दर्द होने लगता है। सिर भारी हो जाता है और कभी-कभी मस्तक में पीड़ा पैदा हो जाती है। मल की अधिक संचित अवस्था में कभी-कभी हलका-सा ज्वर भी हो जाता है। इस प्रकार के कुछ उत्पात पैदा हो जाते हैं।

इन उत्पातों का कारण यह होता है कि भोजन रोकते ही शरीर की समस्त शक्तियाँ एकत्रित मल को बाहर निकालने के लिए एक साथ कोशिश आरम्भ करती हैं। उस दशा में इस प्रकार के उत्पात पैदा होते हैं। इन उत्पातों के आधार पर शरीर के भीतर संचित मल का अनुमान लगाया जाता है। यदि इस प्रकार के उत्पात साधारण होते हैं तो समझना चाहिए कि संचित मल अधिक नहीं है और जब मल अधिक तादाद में होता है तो उत्पन्न होने वाले उत्पात कुछ समय के लिए भीषण रूप धारण करते हैं। सीधी-सी बात यह है कि जितना अधिक मल होता है, उतनी ही तेजी के साथ, उपवास करने पर उसका निकलना आरम्भ होता है।

इस प्रकार जो उत्पात पैदा होते हैं, वे पहले दिन तेजी पर रहते हैं इसी दिन भूख भी अधिक मालूम होती है। दूसरे दिन

उत्पातों की तेजी कम हो जाती है, भूख भी कम हो जाती है और तीसरे दिन उत्पन्न होने वाले समस्त उत्पात करीब-करीब समाप्त हो जाते हैं और भूख भी उस समय तक के लिए रुक जाती है, जब तक शरीर से मल बिलकुल निकल नहीं जाता। तीसरे दिन तबीयत बहुत हलकी मालूम होती है।

इन उत्पातों के दिनों में शीतल और ताजा जल खूब पीना चाहिए। उन दिनों में पानी से भी अरुचि हो जाती है। लेकिन पानी को औषधि समझकर अधिक से अधिक पीने की कोशिश करना चाहिए। पानी अधिक पीने से उत्पन्न होने वाले उत्पातों का कष्ट नहीं मालूम होता। वे जल्दी शांत भी हो जाते हैं और अधिक मात्रा में जल पीने से शरीर के भीतर से मल के बाहर निकालने में बड़ी सहायता मिलती है।

लोग सोचते हैं कि उपवास करने से निर्बलता बढ़ती है और कोई भी निर्बल होना पसन्द नहीं करता। इस प्रकार की बातों का सोचना कोई आधार नहीं रखता। जो उपवास के पक्षपाती हैं और उसके सम्बन्ध में जिनको अनुभव है, वे इस बात का समर्थन नहीं कर सकते।

निर्बलता की बात भी ठीक वैसी ही है, जिस प्रकार लोगों का विश्वास उपवास के दिनों में भूख के सम्बन्ध में है। वास्तव में सत्य यह है कि जो लोग अनाप-शनाप, उलटा-सीधा खा-पीकर पेट भर लिया करते हैं और जिनके शरीर सदा विकारों से परिपूर्ण रहते हैं, उनको अपनी आदतों के कारण झूठी भूखें लगा करती हैं।

यही बात निर्बलता के सम्बध में भी है। खाना रोकते ही आरम्भ के एक-दो दिनों में अधिक बेचैनी और कमजोरी मालूम होती है। उसके बाद वह कम होने लगती है और तीसरे

दिन अथवा उसके बाद, भूख की तरह कमजोरी का मालूम होना भी बहुत कम हो जाता है।

उपवास के दिनों में शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार के कार्य बराबर किये जाते हैं। आरम्भ के दिनों में उत्पात पैदा होने पर भी कोई काम रोका नहीं जाता। जिस प्रकार उपवास के पहले कार्यों का कार्य-क्रम रहता है, उसी प्रकार उपवास के दिनों में भी वह चला करता है। शारीरिक परि-श्रम वाले, शारीरिक परिश्रम करते हैं और मानसिक श्रम वाले, मानसिक श्रम किया करते हैं। व्यायाम करना, दौड़ना, वाकिंग करना, स्नान करना, तैरना, लिखना, पढ़ना वाद-विवाद करना, भाषण देना, यात्रा करना—इस प्रकार सभी काम होते रहते हैं। यदि कोई निर्बलता अथवा किसी दूसरी आशंका से अपने कामों को रोक देता है तो वह भूल करता है और उपवास के वास्तविक लाभों से वंचित रह जाता है। इसलिए श्रम के कारण उत्पन्न होने वाले झूठे विश्वासों को अपने मन से हटा देना चाहिए।

इस प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में शरीर के साथ कभी अत्याचार न करना चाहिए। इस विषय में दो बातें जरूरी हैं। सभी प्रकार के कामों के साथ पूर्ण विश्राम अत्यन्त आवश्यक है और दूसरी बात यह कि शारीरिक अथवा मान-सिक—कोई भी कार्य वहीं तक करना चाहिए, जहाँ तक कोई कष्ट न मालूम हो। परिश्रम के बाद विश्राम आवश्यक होता है और उपवास के दिनों में विश्राम लेने की आवश्यकता अधिक है।

याँह पर एक घटना का उल्लेख जरूरी मालूम होता है। वह घटना शिकागो यूनिवर्सिटी की है। वहाँ के कुछ प्रोफेसरों और विद्यार्थियों ने मिल कर एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चित

किया। नियमित रूप से उपवास आरम्भ किया गया। वह उपवास सात दिनों तक बराबर चला। सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने उपवास के नियमों का पालन किया। आठवें दिन वह उपवास तोड़ा गया।

उस उपवास की एक रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। उसमें बताया गया कि यूनिवर्सिटी का यह उपवास पूर्ण रूप से सफल हुआ। सभी लोग उपवास के दिनों में प्रसन्न रहते थे। शुद्ध जल में खूब स्नान करते थे और प्रातः काल कई-कई मील की वाकिंग करते थे। इसके बाद यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर अपना कार्य और विद्यार्थी अपना कार्य बराबर करते रहते थे।

उस रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि जिन लोगों ने उपवास किया था, वे लोग उपवास के दिनों में पहले की उपेक्षा अधिक प्रसन्न रहते थे और उन्होंने कभी किसी प्रकार की निर्बलता का अनुभव नहीं किया।

---

[११]

उपवास और मस्तिष्क के कार्य

सभी प्रकार के मानसिक कार्य मस्तिष्क की निर्मलता चाहते हैं और मस्तिष्क की निर्मलता शरीर की सफाई पर निर्भर है। मलहीन और विकारहीन शरीर ही मस्तिष्क को स्वच्छ, स्वस्थ और निर्विकार रख सकते हैं।

इस दशा में जो लोग लिखने-पढ़ने का कार्य करते हैं और जो विचारशील होते हैं, उनके लिए यह बहुत आवश्यक है कि उनके शरीर में कभी मल का संचय न हो। इस आवश्यकता की

पूर्त्ति के लिए शिक्षितों और विद्वानों को सदा आवश्यकता रहती है कि वे समय-समय पर उपवास का आश्रय लेकर अपने शरीर और मस्तिष्क को शुद्ध करते रहें।

लोगों का कहना है कि इस शुद्धि की आवश्यकता परिश्रम का कार्य करने वालों के लिए उतनी नहीं होती, जितनी उन लोगों के लिए होती है, जो मस्तिष्क का कार्य करते हैं। यह बात बहुत अंशों में सही है। जिनके शरीर में मल और विकार भरे रहते हैं, उनके मस्तिष्क कभी विकारहीन नहीं रह सकते। इसलिए ऐसे मनुष्य मस्तिष्क सम्बन्धी कोई अच्छा काम नहीं कर सकते। यही कारण है कि मानसिक कार्य करने वालों के लिए मिताहर, अल्पाहार और उसके बाद आवश्यकता पड़ने पर उपवास जरूरी होता है।

प्राचीन काल में धार्मिक व्यक्तियों और विद्वानों के लिए जो उपवास आवश्यक माने गये थे, उसका यही कारण था। इस सत्य को कहीं पर भी देखा जा सकता है। जो लोग नित्य लिखने-पढ़ने का काम करते हैं, वे आवश्यकता से सदा कम भोजन करते हैं। क्योंकि ऐसा न करने से वे मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य नहीं कर सकते।

पढ़ने वाले लड़के और लड़कियों के लिए यह आवश्यक होता है कि वे सदा मिताहारी होकर रहें। जो विद्यार्थी ऐसा नहीं करते और आवश्यकता के बाहर ठूँस-ठूँसकर पेट भर लेते हैं, वे पढ़ने-लिखने में सदा बोदे पाये जाते हैं। उनके मस्तिष्क के कमजोर होने का यही कारण होता है कि उनके शरीर में मल का अपार संचय रहता है।

सभी प्रकार के व्यक्तियों में इस सत्य को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है कि जो लोग मिताहारी होते हैं, वे बुद्धिमान और प्रतिभाशाली होते हैं। लेकिन जो पेटू होते हैं और जो

अधिक से अधिक खाने के शौकीन होते हैं, उनकी बुद्धि निर्बल पड़ जाती है। इसलिए पढ़ने-लिखने वालों और शिक्षितों के लिए यह आवश्यक है कि वे मिताहारी और अल्पाहारी होकर रहें। क्योंकि ऐसा करना बहुत अंशों तक उपवास के नियमों का पालन करना है।

ऊपर की विवेचना से इस बात का निर्णय हो जाता है कि जो लोग मानसिक कार्य करते हैं, उनके लिए शरीर और मस्तिष्क की शुद्धता अधिक आवश्यक है और इसकी रक्षा उसी दशा में हो सकती है जब मल और विकारों का संचय मालूम होते ही उपवास करके उनका शमन किया जाय।

इस उपवास का लाभ उठाने के लिए प्रायः शिक्षित लोग एक नियम बना लेते हैं और वे सप्ताह में एक दिन उपवास करते हैं। ऐसा करने से उनके शरीर के मल को एकत्रित होने का मौका नहीं मिलता और जो कुछ संचित होता है, सप्ताह के एक दिन के उपवास में उसका क्षय हो जाता है। लेकिन इस प्रकार के उपवासों में प्रायः एक अभाव रहा करता है। उपवास के नियमों का ज्ञान न होने के कारण उपवास करके भी वे बहुत-कुछ उसके लाभ से वंचित रहते हैं। कदाचित् इस प्रकार के उपवास धार्मिक दृष्टि से किये जाते हैं और व्रत रहकर एक निश्चित समय तक भोजन न करना ही उनका उद्देश्य होता है। इसलिए इस प्रकार के लोग व्रत रहने के एक दिन पहले गरिष्ठ भोजन करते हैं कि जिससे उपवास के दिन उनको भूख न लगे और कुछ उसी प्रकार के भोजन के साथ वे उपवास को भंग भी करते हैं। उपवास का यह नियम नहीं है।

उपवास के पक्षपातियों को सदा सादा भोजन करना चाहिए और उपवास को तोड़ने के बाद अत्यन्त पाचक भोजन की चीजों का सेवन करना चाहिए। उपवास के दिन अधिक

पानी पीना चाहिए। इसके साथ-साथ परिश्रम, स्नान और विश्राम भी आवश्यक होती है। उपवास के ये जरूरी नियम हैं।

इतने से ही उपवास की पूर्ति नहीं होती। शरीर को शुद्ध करने के लिए आवश्यकता के अनुसार मानसिक कार्य करने वालों को भी उपवास करना चाहिए और उसके साथ उसके सभी नियमों का पालन करना चाहिए। इस प्रकार के लोगों के लिए आत्म-शुद्धि की बड़ी आवश्यकता होती है। और आत्म-शुद्धि शरीर-शुद्धि पर निर्भर है। अतएव समय-समय पर उन्हें उपवास का आश्रय लेकर अपने शरीर और मस्तिष्क को परिष्कृत कर लेना चाहिए।

बुद्धि के विकास के लिए उपवास एक आवश्यक अंग है। इसे उसकी एक साधना समझकर समय-समय पर उसका उपयोग किया जाता है। इस विषय में एक छोटी-सी घटना का मैं यहाँ पर उल्लेख करना चाहती हूँ। एक विद्यार्थी बी० ए० की फाइनल परीक्षा में दो बार असफल हुआ। वह विद्यार्थी परिश्रम करने में सबसे आगे था और पढ़ने-लिखने में उसकी लगन बहुत आरम्भ से थी। उसके घर की आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत निर्बल थीं। इसीलिए वह अधिक परिश्रम किया करता था।

उसके इस परिश्रम का फल उसे कभी न मिला। सभी लोग कहा करते कि वह परिश्रमी तो बहुत है परन्तु उसकी बुद्धि बहुत स्थूल है।

अपनी इस आलोचना को सुनकर वह विद्यार्थी बहुत लज्जित होता था। बी० ए० की परीक्षा में दूसरी बार असफल होने के बाद उसने पढ़ने का विचार छोड़ दिया और वह इस खोज में रहने लगा कि मेरी बुद्धि इतनी निर्बल क्यों है ?

अपने इस प्रश्न को लेकर उस विद्यार्थी ने बहुत-से चिकित्सकों से बातें कीं। परन्तु किसी से उसको संतोष न

मिला। अंत में उसकी भेंट एक प्राकृतिक चिकित्सक से हुई। विद्यार्थी की बातों को सुनकर उसे बड़ी दया मालूम हुई। उसने विद्यार्थी से फिर पढ़ने के लिए कहा और उसके शरीर की बहुत-सी बातों का अध्ययन करके उसको उपवास के नियम बताये। उसके खाने-पीने की चीजों में परिवर्तन किया।

इस नयी व्यवस्था से उस विद्यार्थी को अद्भुत लाभ हुआ। उसका पहले चित्त कभी प्रसन्न न रहता था। उसका शरीर विकारों से भरा हुआ था। सम्पूर्ण मस्तिष्क विकारों के कारण शून्य हो रहा था। उस विद्यार्थी ने भोजन में पूर्ण परिवर्तन किया। गरिष्ट और बासी भोजन का खाना छोड़कर फलों के साथ-साथ अपने शाकाहार को अधिक महत्व दिया। चार महीने के भीतर उसने तीन लम्बे उपवास किये। इन उपवासों से उसका शरीर और मस्तिष्क निर्विकार होकर परिष्कृत हो गया। उसका मन बहुत प्रसन्न रहने लगा। उसकी मानसिक वृत्तियों को अद्भुत स्फूर्ति प्राप्त हुई। उस समय से वह उपवास का पूरा भक्त हो गया और तीसरे वर्ष जब वह परीक्षा में बैठा तो वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

एक अंगरेज लेखक ने उपवास की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

'मानसिक विकास के लिए प्राकृतिक भोजन के साथ-साथ उपवास से अधिक उपयोगी दूसरा कोई साधन नहीं है।'

वास्तव में उपवासों का हमारे जीवन में कई तरह से प्रभाव पड़ता है। बौद्धिक विकास के लिए उपवास एक सफल साधन है, इसके बहुत-से प्रमाण हैं। इस दशा में जिन लोगों को मस्तिष्क का काम करना पड़ता है, उन्हें उपवासों से लाभ उठाना चाहिए।

———

[१२]

छोटे और बड़े उपवास

मनुष्य जीवन के प्रारम्भ काल से लेकर अब तक रोगों का निवारण करने के लिए जितने भी उपायों की खोज हुई है, उनमें उपवास सब से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ है। यों तो साधारण तौर पर उपवास करने से लाभ होता ही है, परन्तु अनुभव और अनुसंधान के साथ उपवास के दिनों में अनेक प्रकार के उपचारों को लेकर जो एक विधान बना डाला गया है, और उपवास के सम्बन्ध में जिसे उस विषय के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है, वह रोगों के निवारण में जादू का सा प्रभाव डालता है।

उस समय से पूर्व, जब मनुष्य को इस उपवास का ज्ञान हुआ और उसका प्रचार किया गया, सभी प्रकार के मनुष्य उपवास से डरा करते थे और आज भी जिनको उपवास के सम्बन्ध में न तो ज्ञान है और न विश्वास है, वे उपवास से डरते हैं। उनके इस डर के दो कारण हैं; एक तो यह कि उनके जीवन प्रकृति के नियमों से बहुत दूर हो गये हैं और दूसरे यह कि उपवास करने से दुर्बलता पैदा होती है।

उपवास के सम्बन्ध में इस प्रकार की गलत धारणायें समाज में कम होती जाती हैं। सही बातों का जितना ही प्रचार होता है, झूठे विश्वासों में उतनी ही कमी होती है। मनुष्य ने बहुत समय तक रोगों की पीड़ा का अनुभव किया और उनकी वृद्धि में उसने लगातार बहुत दिनों तक भीषण हानियाँ उठायीं। विवश होकर उसे सत्य की खोज करनी पड़ी और अपनी खोज में उसे जीवन का सत्य प्रकृति के नियमों में दिखायी पड़ा।

इसी आधार पर स्वास्थ्य प्राप्त करने और रोग-निवारण करने में संसार के कितने ही विद्वानों का विश्वास उपवास की ओर आकृष्ट हुआ। उसके बाद अधिक अनुभव किये गये। अन्वेषण के पश्चात् उपवास की उपयोगिता स्वीकार की गयी और लगातार उसका प्रचार हुआ।

आज हालत कुछ और है। संसार में उन लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है, जो प्रकृति के नियमों पर विश्वास करते हैं। उन्हीं नियमों में स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उपवास प्रमुख है।

इस प्रकार उपवास की उपयोगिता मनुष्य जाति में लगातार बढ़ रही है और उसके विषय में जितना ही अनुभव हो रहा है, उतना ही विश्वास बढ़ता जाता है। यह विश्वास अभी तक शिक्षितों में अपना स्थान बना रहा है। इसमें विशेषता यह है कि जो एक बार इसकी उपयोगिता का अनुभव कर लेता है, वह फिर कभी इसके आश्रय को छोड़ने का साहस नहीं करता।

शरीर और मस्तिष्क को प्रत्येक अवस्था में स्वस्थ रखने के लिए उपवास से अचूक सफलता मिलती है। ये उपवास छोटे भी होते हैं और बड़े भी। आवश्यकता को देखकर छोटे अथवा बड़े उपवास की साधना की जाती है। यों तो उपवास अत्यन्त साधारण और हमारे जीवन की एक सरल आवश्यकता है। फिर भी शरीर की आवश्यकता को देखकर उनके प्रयोग किये जाते हैं। इस दशा में उनकी कई श्रेणियाँ हो जाती हैं, जो इस प्रकार हैं—

१—सरल उपवास
२—छोटा उपवास
३—लम्बा उपवास

साधारण तौर पर सभी प्रकार के उपवासों को इन्हीं तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। जो लोग आवश्यकता पड़ने पर उप-

वास करना चाहते हैं, उनको इन तीनों प्रकार के उपवासों के सम्बन्ध में साफ-साफ जान लेने की जरूरत है। यदि प्रकृति की सत्ता हमारे जीवन से मिट न गयी होती तो अन्य प्राणियों की तरह हमें भी उपवास के सम्बन्ध में यथोचित ज्ञान होना चाहिए था। परन्तु लगातार बहुत समय तक प्रकृति के नियमों के विरुद्ध चलने के कारण उसकी सत्ता हमारे जीवन से नष्ट हो गयी है। न तो हमें अब इस बात का ज्ञान रह गया है कि हमारे भोजन की चीजें क्या हैं और न हमें इस बात का ज्ञान रह गया है कि हमें क्या खाना चाहिए और कितना खाना चाहिए? अप्राकृतिक होकर हम सब ने केवल खाना खाना सीखा है और उसका परिणाम यह हुआ है कि समाज में हम सब के जीवन रोगों से लदे हुए हैं।

उपवास का एक साधारण नियम यह है कि जब शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य एकत्रित होने लगें तो खाना बन्द कर देना चाहिए और उस समय तक बन्द रखना चाहिए कि जब तक मल और विकारों से हमारा शरीर पूर्ण रूप से शुद्ध न हो जाय।

दूसरे जीवों में ऐसा ही होता है। परन्तु मनुष्य की दशा बहुत विचित्र हो गयी है। उसका शरीर विजातीय द्रव्य के कारण विषाक्त हो रहा है, रोगों के आक्रमण से शरीर जर्जरित हो गया है। परन्तु वह खाना नहीं बन्द करना चाहता। उसे रोगी रहना मंजूर है, परन्तु खाना बन्द करना मंजूर नहीं है। आदमी की जिन्दगी की सारी मुसीबतों का कारण यही है। इससे मनुष्य के जीवन में लगातार रोगों की वृद्धि होती जाती है।

अपनी स्वाभाविक क्षमता को खो देने के कारण मनुष्य को आज उन सभी बातों के जानने की जरूरत है, जिनका ज्ञान

उसे स्वयं होना चाहिए था और इसीलिए उसे यह भी जानने की जरूरत है कि उसे कब, किस प्रकार का उपवास करना चाहिए।

शरीर की साधारण जरूरतों में सरल उपवास से काम चल जाता है। साधारण जरूरतों का अर्थ यह है कि जब शरीर में मल और विकार का संचय अधिक नहीं होता और थोड़ी-सी मात्रा में उत्पन्न हुए विकार, उपवास की आवश्यकता को बताने लगते हैं, ऐसे अवसरों पर सरल उपवासों से काम चल जाता है और लम्बे उपवास की जरूरत नहीं पड़ती है।

सरल उपवास के प्रयोग कई तरीकों से किये जाते हैं। अल्पाहार और उद्धोंपवास उसी के अंग हैं। उपवास की आवश्यकता को बताने वाले लक्षणों को पहले ही लिखा जा चुका है। वे लक्षण शरीर के भीतर संचित होने वाले विजातीय द्रव्य की सूचना अपने आप देते हैं। यदि उनको सावधानी के साथ समझने की चेष्टा की जाय तो आसानी के साथ हम सबको मालूम हो जायगा कि हमारे शरीर को किस प्रकार के उपवास की जरूरत है।

विकारों का संचय कम होने पर अल्पाहार से भी काम चल जाता है। जब इस प्रकार का कोई मौका पैदा होता है तो समझ लेना चाहिए कि जितना भोजन किया जाता है, उनका परिपाक ठीक-ठीक नहीं हो पाता। इसलिए भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिए। इसी को अल्पाहार कहते हैं। ऐसा करने से सुधार न होने पर खाने की चीजों में परिवर्तन करना चाहिए और शाकाहार को अधिक महत्व देना चाहिए। यदि इससे भी पाचन-क्रिया का कार्य ठीक तौर पर न हो और यह मालूम हो कि शरीर के भीतर मल का संचय हो रहा है तो चौबीस घण्टे में एक बार पाचक चीजों का अल्पाहार करना चाहिये।

कभी-कभी थोड़ी मात्रा में भी एकत्रित मल को निकालने में ऊपर के उपायों से काम नहीं चलता। उस दशा में तीन दिनों का, पाँच दिनों का अथवा सात दिनों का उपवास किया जाना चाहिए। ये उपवास सरल उपवासों तक ही सीमित हैं।

जब शरीर के भीतर एकत्रित मल और विजातीय द्रव्य की अधिकता होती है तो उस दशा में उपवास की आवश्यकता बताने वाले लक्षण कठोरता के साथ सूचना देते हैं। उस समय यदि उपवास करके उस एकत्रित विजातीय द्रव्य को निकालने और शरीर को विशुद्ध बनाने की चेष्टा नहीं की जाती तो शरीर में भयानक रोगों के आक्रमण आरम्भ हो जाते हैं।

इसलिए शरीर के भीतर जब विष की अधिकता हो अथवा भीषण रोगों के आक्रमण आरम्भ हो गये हों तो उस दशा में सरल उपवास से काम नहीं चलता और लम्बा उपवास करके शरीर को शुद्ध करना पड़ता है। इस लम्बे उपवास की कोई एक परिभाषा नहीं है। एक सप्ताह से अधिक जो उपवास किये जाते हैं, उनकी गिनती लम्बे उपवासों में की जाती है और आवश्यकता के अनुसार उपवास के दिनों की संख्या अधिक होती जाती है। यह संख्या बढ़कर एक मास तक और कभी-कभी उससे भी कुछ ऊपर निकल जाती है।

उपवास करने के नियम विस्तार के साथ, स्पष्ट रूप में आगामी परिच्छेद में लिखे जायँगे। इसलिए उसके सम्बन्ध की सभी बातें उसमें पढ़ना चाहिए। यहाँ पर विभिन्न प्रकार के उपवासों पर प्रकाश डालना है और उनके सम्बन्ध में जिन बातों को जानना चाहिए, उनको यहाँ बता देना है।

एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन के सरल उपवास को छोड़कर बाकी सभी उपवासों में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। कब किस प्रकार के उपवास की जरूरत है और उस उपवास के नियम क्या हैं अथवा जिस प्रकार के उपवास का प्रयोग आप करने जा रहे हैं, उसमें किस प्रकार की सावधानी से काम लेना चाहिए और किन उपचारों के साथ उपवास को सफल बनाना चाहिए ? इन सभी बातों को बुद्धिमानी के साथ समझना एवम् अच्छे जानकारों से काम लेना बहुत आवश्यक है।

कोई भी उपवास नियमों के विरुद्ध न चलना चाहिए। इसलिए उसके समस्त नियमों को, जो 'उपवास करने के नियम' नामक परिच्छेद में लिखे गये हैं, ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। एक बार पढ़ने से काम नहीं चलता। इस विषय में जितना ही पढ़ा जायगा, उतना ही उसका ज्ञान होगा। किसी भी उपवास का प्रयोग करने के पूर्व उसके नियमों के सम्बन्ध में सावधानी के साथ पढ़ने की जरूरत होती है। उपवास के दिनों में उसके नियमों और उपचारों को पढ़ने और उनको ध्यान में रखने की बड़ी आवश्यकता है। जो इसके पुराने अनुभवी होते हैं, उनको भी ऐसा करने की जरूरत पड़ती है।

इसलिए मेरी सलाह यह नहीं है कि कोई भी व्यक्ति उपवास के सम्बन्ध में एक बार पढ़कर और प्रभावित होकर उपवास करना आरम्भ कर दे। इस विषय में दो बातों का स्मरण रखना बहुत जरूरी है। एक तो यह कि उपवास नियमित रूप से चलना चाहिए और दूसरी बात यह कि जो उपवास जितना ही लम्बा होता है, वह उतनी ही सावधानी और संरक्षण चाहता है। इसलिए बड़े उपवास बिना किसी पुराने अनुभवी के संरक्षण के कभी आरम्भ न करने चाहिए। ऐसा करना एक बड़ी भूल होगी।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि एक जानकार व्यक्ति को भी लम्बे उपवासों में अपने ऊपर विश्वास न करना चाहिए। इसका कारण यह है कि जिस आदमी को आवश्यकता होती है, वह प्रायः नियमों की बात को भूल जाया करता है। उपवास के दिनों में बार-बार शरीर की कुछ ऐसी माँग होती है, जिसे बड़ी कठोरता के साथ शमन करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर यदि उपवास का उत्तरदायित्व, उपवासी पर ही होता है तो उससे भूल हो सकती है। आवश्यकता की तीव्रता में बहुधा मनुष्य का अपना ज्ञान धोखा दे जाता है। इस प्रकार की बातें कौन-सी होती हैं, उन्हें 'उपवास करने के नियम' नामक परिच्छेद में स्पष्ट और विस्तार के साथ लिखा गया है।

किसी नये व्यक्ति को पहले पहल-लम्बे उपवास का निर्णय न करना चाहिए। उपवास पर आस्था उत्पन्न करने के लिए उसके विषय में अधिक पढ़ने की आवश्यकता है। उसके बाद भी आवश्यकता पड़ने पर पहले-पहल न तो स्वयं लम्बा उपवास करना चाहिए और न किसी दूसरे को लम्बा उपवास कराना चाहिए। छोटे-छोटे उपवास कर लेने के बाद उसके सन्बन्ध में अनेक बातों का अनुभव हो जाता है और उन बातों की जानकारी हो जाती है, जो प्रायः पढ़ने से नहीं हुआ करतीं। इसलिए उपवासों में क्रमशः प्रवेश करना चाहिए। इस विषय में जिसने अल्पाहार से लेकर बड़े उपवासों तक लगातार अनुभव किया है, वही उसका अनुभवी कहा जा सकता है। पुस्तकों में उपवास के सम्बन्ध में केवल पढ़ लेने से कोई अनुभवी नहीं हो जाता। इसलिए उपवास की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि छोटे-से-छोटे उपवास करके अनुभव करते हुए बड़ी जिम्मेदारी के साथ किसी लम्बे उपवास का

निश्चय करें और उसके लिए किसी अधिकारी का संरक्षण प्राप्त कर लें।

उपवास जितना ही उपयोगी है, उसके सम्बन्ध में उतनी ही अधिक सावधानी की आवश्यकता है। उपवास हमको नीरोग बनाते हैं और दीर्घ जीवन देते हैं। प्युरिंगटन इस विषय का एक महान विद्वान् माना जाता है, उसने अपने उपदेशों में सदा बताया है—

"यदि आप स्वास्थ्य, जीवन का सुख, शक्ति, पुरुषार्थ और दीर्घ जीवन चाहते हैं तो आपको उपवास करना चाहिए। शरीर के विष और विकार को नष्ट करने के लिए नियमित रूप से जब आप समय-समय पर उपवास करेंगे तो आपको आत्म-बल, नैतिक बल, विश्वास और साहस प्राप्त होगा। ऐसा करके आप आध्यात्मिक उन्नति करेंगे और अपने जीवन में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेंगे।"

---

[१३]

उपवास करने के नियम

उपवास का बहुत सीधा और छोटा-सा अर्थ यह होता है कि उससे शरीर के भीतर एकत्रित विजातीय द्रव्य, विकार और विष की सफाई होती है और पाचन-क्रिया को स्फूर्ति, उत्तेजना और शक्ति प्राप्त होती है।

इस उद्देश्य के लिए साधारण उपवास एक दिन का, दो दिनों का और तीन दिनों का कभी भी किया जा सकता है।

उसके लिए बहुत सोच-विचार की जरूरत नहीं होती। प्रकृति स्वयं यह चाहती है कि शरीर में विकारों के संचय का आभास होते ही खाना तुरन्त रोक देना चाहिए। हम सभी लोग यह आसानी से कर सकते हैं। परन्तु इस विषय की खोजों के अनुसार जो नियम आवश्यक माने गये हैं, उनके अनुसार उपवास करने से उसकी सफलता पूरी तौर पर होती है। इसलिए उन नियमों का पालन करना चाहिए।

बड़े उपवास को आरम्भ करने के पहले खूब समझ बूझ लेना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि जिनके हृदय और स्वभाव में विचारों की स्थिरता और दृढ़ता नहीं होती, वे उपवास के सम्बन्ध में सफल नहीं होते। इसके लिए बहुत कठोर होकर निर्णय करना पड़ता है और कोठरता के साथ उसे पूरा करना पड़ता है।

उपवास आरम्भ करते ही संचित विजातीय द्रव्य के अनुसार शरीर में अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं। उनसे घबराना नहीं चाहिए। जिनको उपद्रव कहा जाता है, वे सब शरीर से विष को निकालने का और उसे शुद्ध बनाने का काम करते हैं। इसलिए उन उत्पातों के द्वारा जो शरीर में कष्ट उत्पन्न होता है, उससे दो बातों का पता चलता है। एक तो यह कि विजातीय द्रव्य का संचय किस प्रकार है अर्थात् उसका संचय कम होने पर उत्पन्न होने वाले उपद्रव बहुत साधारण होते हैं। लेकिन जब विकार और विष का संचय अधिक होता है तो उपवास आरम्भ करने के साथ ही अनेक उपद्रव पैदा होते हैं और प्रायः वे भीषण मालूम होते हैं। इसलिए दूसरी बात का ज्ञान यह होता है कि शरीर से विष के निकालने का कार्य आरम्भ हो गया है। उपद्रवों के जोर पकड़ने पर उनके शमन करने के उपाय किसी आगामी परिच्छेद में लिखे जायँगे।

उपवास के सम्बन्ध में ऊपर जितनी भी बातें लिखी जा चुकी हैं, उन सबको अपने मन में रखकर, उपवास का निर्णय करना चाहिए। जिस मनुष्य का उपवास पर जितना अधिक विश्वास होता है, उसको उससे उतना ही अधिक लाभ होता है।

जिनका ख्याल है कि उपवास करने से कष्ट होता है, वे भूल करते हैं। सच बात यह है कि उपवास आरम्भ करते ही एक या दो दिनों के बाद जिस प्रकार का सुख मिलता है, उसकी पहले कोई कल्पना नहीं कर सकता, वह सुख एक अपूर्व सुख होता है, जिसका अनुभव उपवास के दिनों में ही होता है।

उपवास के नियमों को लिखने के पहले मैं फिर एक बार यह बताना चाहती हूँ कि आसानी के साथ, बिना किसी विशेष कारण के लम्बा उपवास न करना चाहिए। यह बात सही नहीं है कि उपवास जितना लम्बा होगा, शरीर को उसका उतना ही अधिक लाभ होगा। वास्तव में सही बात यह है कि साधारण परिस्थितियों में शरीर से विजातीय द्रव्य को निकालने के लिए सरल उपवास अधिक उपयोगी होते हैं। यह लिखा जा चुका है कि सात दिनों तक के उपवास सरल उपवास कहलाते हैं। यदि नियमित रूप से उनके प्रयोग किये जायँ तो शरीर को शुद्ध करने में पूरी सफलता मिलती है। इसलिए स्वस्थ मनुष्य को भी आसानी से लम्बे उपवास में न पड़ना चाहिए। इसको समझ लेने की आवश्यकता है।

एक सप्ताह से अधिक दिनों के उपवास भी किये जाते हैं। लेकिन विशेष रोगों में अथवा विशेष आवश्यकताओं में। ऐसे रोगों का उल्लेख आगे चलकर आवश्यकता के अनुसार किया जायगा।

उपवास करने के भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। एक या दो दिन शौच जाने पर पेट साफ न होने की दशा में उस समय

तक भोजन न करना चाहिए, जब तक पेट की सफाई न हो जाय। भोजन रोक देने से पेट साफ हो जाना चाहिए। साधारण दो-चार दिनों के कब्ज में तीन दिनों का उपवास कर लेना काफी होगा। लेकिन उस उपवास में पानी पीने के सिवा और कुछ न खाया जाय और जब उपवास तोड़ा जाय तो किसी फल से। बाद में भी एक या दो रोज तक हलका भोजन अर्थात् शाक-तरकारियाँ अधिक खायी जायँ।

छोटे और सरल उपवासों में भी ताजे और ठण्ढे जल का ही पीने और नहाने में उपयोग होना चाहिए। कभी-कभी खट्टे नीबू का रस पीने के पानी में मिला सकते हैं। किसी भी उपवास में चौबीस घण्टे तक कुछ न खाने के बाद एनिमा लेना चाहिए और उपवास के दिनों में बराबर एनिमा लिया जाय।

रोग की साधारण दशा में अथवा शरीर के मामूली विकारों में छोटे उपवास करना चाहिए और उनका लाभ उठाना चाहिए। उनके नियम इस प्रकार हैं—

उपवास आरम्भ करने के पहले अपने शरीर की और अपने रोग की दशा पर विचार कर लेना चाहिए। फिर यह निश्चय करना चाहिए कि हमें कितने दिनों का उपवास करना है। यह सोचकर और निर्णय करके उपवास आरम्भ किया जाय। मान लीजिए, सात दिनों का उपवास करना है। क्योंकि तीन दिनों का उपवास कोई महत्व नहीं रखता। सात दिनों का निश्चय करके उपवास आरम्भ कर देना चाहिए। उसके चौबीस घण्टे के बाद एनिमा लेना चाहिए और ताजा तथा ठण्ढा जल आरम्भ से ही पीना चाहिए। उपवास आरम्भ करते ही खुश्की और कुछ बेचैनी-सी मालूम होती है। ठण्ढा जल पीने और नहाने से इन दोनों बातों में आराम मालूम होता है।

इस ठण्ढे जल में पीने के समय नीबू का रस मिला सकते हैं, परन्तु शक्कर या चीनी कभी न मिलानी चाहिए। तीन दिनों तक जो बेचैनी मालूम होगी, वह फिर एक साथ घटने लगेगी। बाद में न तो भूख मालूम होगी और न किसी प्रकार की बेचैनी। ठण्ढे जल में नित्य स्नान करना चाहिए और प्रसन्न रहना चाहिए। इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि उपवास के दिनों में—चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा—एनिमा रोज नियमित रूप से लेना चाहिए और उपवास के सभी नियमों का पालन करना चाहिए, जो 'उपवास करने के नियम' नाम के परिच्छेद में लिखे गये हैं।

आवश्यकतानुसार इस उपवास को अथवा किसी भी उपवास को बढ़ाया जा सकता है। उसके सभी नियम उसी प्रकार बराबर चलते रहते हैं। खाने की कोई भी वस्तु किसी भी दशा में नहीं दी जाती। पेट की सफाई एनिमा के द्वारा रोज करनी चाहिए।

उपवास के दिनों में एनिमा लेना, उपवास का एक अंग है। वह अत्यन्त आवश्यक है। उसके सम्बन्ध की सभी जरूरी बातें 'एनिमा लेने की विधि' नामक परिच्छेद में लिखी गयी है।

उपवास कोई भी हो, दृढ़ता और स्थिरता चाहता है। इसके बिना छोटा और बड़ा—कोई भी उपवास सफल नहीं होता। अगर विश्वास पूर्वक उपवास आरम्भ किया गया है तो उसमें चित्त की स्थिरता से काम लेना चाहिए।

छोटे उपवासों की अपेक्षा लम्बे उपवासों में अधिक और नियमों के पालन में कठोरता से काम लेना चाहिए और नीचे लिखे हुए नियमों का सभी प्रकार के उपवासों में निश्चित रूप से पालन होना चाहिए।

१—पीने का जल शीतल और ताजा होना चाहिए, अर्थात् बासी न होना चाहिए।

२—यदि गरमी के दिन हों तो ताजे जल को मिट्टी के घड़े में भरकर ठंढा कर लेना चाहिए।

३—जल को ठंढा करने के लिए बर्फ का प्रयोग न करना चाहिए।

४—नित्य शीतल जल में स्नान करना चाहिए। गरमी के दिनों में दो बार अवश्य स्नान करना चाहिए।

५—किसी भी उपवास को आरम्भ करने के पहले एनिमा अथवा दूसरे उपायों के द्वारा पेट की सफाई कर लेना चाहिए।

६—उपवास के दिनों में एनिमा रोज अथवा एक दिन छोड़ कर अवश्य लेना चाहिए।

७—उपवास आरम्भ करने के पहले कई दिनों से भोजन हलका और पाचक करना चाहिए।

८—छोटे उपवासों में भी एनिमा देने के बाद बारह घंटे के पहले कोई फल न खाना चाहिए।

९—एनिमा के बाद शौच जाना बन्द हो जाने पर शीतल जल में अच्छी तरह से स्नान करना चाहिए। स्नान के पहले दतून कर लेना अथवा मुँह की सफाई कर लेना आवश्यक होता है।

१०—स्नान कर चुकने पर ठंढा पानी नींबू डालकर अथवा बिना नींबू का पीना चाहिए।

११—जिन उपवासों में फल अथवा उनका रस देना लिखा गया है, उनके सम्बन्ध में ध्यान रहे कि चौबीस घंटे में आधा सेर से अधिक रस न दिया जाय। इसको कई बार में देना चाहिए।

१२—फलों के रस के अभाव में मक्खन निकाला हुआ दूध अथवा मट्ठा देना चाहिए।

१३—नित्य सायंकाल सोने के समय दो बड़े कागजी नींबू का रस निकाल कर पीना चाहिए। सरदी के दिनों में एक बड़ा नींबू भी काफी होता है।

१४—जिन उपवासों में फलों का रस पीने को बताया गया है, उसमें ध्यान रहे कि उसके बाद तुरन्त पानी न पीना चाहिए।

१५—फलों अथवा फलों के रस के बाद कम-से-कम आध घंटे में पानी पीने को देना चाहिए।

१६—उपवास के दिनों में शुद्ध और शीतल जल पीने का बहुत बड़ा महत्व है। एक बयस्क व्यक्ति को चौबीस घंटे में तीन सेर तक पानी पीना चाहिए।

१७—जाड़े के दिनों में भी और प्यास न लगने की हालत में भी पानी पीना आवश्यक है।

१८—पानी एक साथ तेजी के साथ न पीना चाहिए। चूस-चूसकर पानी पीना अधिक उपयोगी होता है।

१९—उपवास के दिनों में शुद्ध वायु में रहना और सोना अत्यन्त आवश्यक है।

२०—उपवास करने वाले को अपने नित्य के काम बराबर जारी रखने चाहिए, लेकिन थकावट मालूम होने पर हठपूर्वक कोई काम न करना चाहिए।

२१—जो लोग व्यायाम करने के अभ्यासी हैं, उन्हें नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। किन्तु यदि शरीर की शक्तियाँ निर्बल पड़ती हों और उपवासी की इच्छा न हो तो फिर व्यायाम बन्द कर देना चाहिए।

२२—उपवास के दिनों में खुली वायु में टहलना उस समय तक आवश्यक होता है, जब तक थकान न मालूम हो।

२३—उपवास के दिनों में टहलने और सभी प्रकार के काम करने के साथ-साथ विश्राम अत्यन्त आवश्यक है।

२४—इन दिनों में शांतिपूर्वक रहना, प्रसन्न रहना और पूर्ण रूप से विश्राम करना जरूरी है।

२५—लम्बे उपवासों में विश्राम और शांति अधिक आवश्यक है। इसके लिए सोना सबसे अच्छा उपाय है।

२६—रात को अधिक से अधिक सोने की चेष्टा करनी चाहिए।

२७—पेट में खुश्की बढ़ने पर थोड़ा-थोड़ा शीतल जल बार-बार पीना चाहिए और चक्कर मालूम होने पर ठंढे जल में स्नान करना चाहिए।

२८—उपवास के दिनों में सादे पानी की अपेक्षा उसमें नींबू और शहद अथवा थोड़ा-सा गुड़ मिला कर पीने से अधिक लाभ होता है। इससे शरीर के विजातीय द्रव्य को निकालने में बड़ी सहायता मिलती है। यदि पानी में किसी फल का रस मिलाकर दिया जाय तो वह सबसे श्रेष्ठ है।

२९—इन दिनों में यदि खुश्की अधिक बढ़े, आँखों में जलन पैदा हो अथवा नहाने से चक्कर न बन्द हों तो पेड़ू पर नियमित रूप से मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। मिट्टी की पट्टी रखने की विधि 'एनिमा लेने की विधि' नामक परिच्छेद में लिखी गयी है, उसे देख लेना चाहिए।

उपवास करने के नियमों में ऊपर जो बातें लिखी गयी हैं, वे सभी अत्यन्त आवश्यक हैं। इन नियमों के साथ उपवास आरम्भ करना चाहिए। उसके किसी नियम को भंग करने से लाभ नहीं हो सकता। खाने के सम्बन्ध में जो नियम लिखे गये हैं, उनका पालन कठोरता के साथ होना चाहिए।

———

(१४)

उपवास के दिनों में कष्ट

उपवास आरम्भ करने पर शरीर में कुछ कष्ट पैदा हो जाते हैं। उनसे घबराना नहीं चाहिए। उनके पैदा होने का कारण होता है। शरीर में गरमी का बढ़ना, मस्तक में पीड़ा होना, हाथों-पैरों में दर्द होना, आँखों में जलन का बढ़ना, चक्कर का आना, रात में नींद न आना, दिल के धड़कन का होना और घबराहट का बढ़ना इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं। उनके सम्बन्ध में यहाँ पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

दसवें परिच्छेद में इस प्रकार की कुछ बातों का उल्लेख किया जा चुका है। उसके साथ वहाँ पर यह लिखा गया है कि इस प्रकार के उपद्रव पैदा होने का कारण यह है कि उपवास आरम्भ करने पर शरीर की अनेक शक्तियाँ संचित विजातीय द्रव्य को एक साथ निकालने का कार्य आरम्भ कर देती हैं। उसी के परिणाम स्वरूप इस प्रकार के कष्टों की अनुभूति हमें होती है।

सब से पहले इन कष्टों के सम्बन्ध में यह जान लेना चाहिए कि आरम्भ में पहले ही दिन से जो शरीर में कष्ट उत्पन्न होते हैं, वे दूसरे दिन बहुत कुछ कम हो जाते हैं और तीसरे दिन तक वे कष्ट शरीर को छोड़कर चले जाते हैं।

इस दशा में उपवास आरम्भ करते ही जो कष्ट उत्पन्न होते हैं, उनको दूर करने के लिए साधारण तौर पर किसी उपचार की आवश्यकता नहीं पड़ती, उनका

अपने आप शमन हो जाता है। लेकिन थोड़ा धैर्य से काम लेना चाहिए। उपवास के साथ-साथ जो कई प्रकार के उपचार आरम्भ होते हैं, उनसे विजातीय द्रव्य की अधिकता तीसरे दिन तक इतनी कम हो जाती है कि जिससे उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ अपने आप चली जाती हैं।

इतना होने पर भी किसी-किसी उपवासी को इस प्रकार का कष्ट हो सकता है कि जिससे उसके रोक-थाम की आवश्यकता पड़े। इसलिए किन बढ़ते हुए कष्टों में क्या उपचार करना चाहिए? उसकी व्यवस्था नीचे दी जाती है—

शरीर में पीड़ा—उपवास आरम्भ करते ही शरीर में पीड़ा उत्पन्न होती है। पैरों में एक बड़ी थकान-सी मालूम होती है। इसको रोकने के लिए परिश्रम के कार्य बन्द कर देने चाहिए। अधिक चलना-फिरना भी रोक देना चाहिए। ठंढा पानी बार-बार पीना चाहिए। खुल कर स्नान करना चाहिए और विश्राम करना चाहिए। ऐसा करने से उसमें कमी मालूम होगी और दूसरे ही दिन वह पीड़ा शान्त हो जायगी।

मस्तक-पीड़ा—सिर में पीड़ा का होना उपवास के आरम्भ के साथ-साथ अत्यन्त स्वाभाविक होता है। इसकी साधारण अवस्था में उसे भुलाने की चेष्टा करनी चाहिए। दूसरे या तीसरे दिन अपने आप उसमें कमी हो जायगी। यदि पहले ही दिन सिर की पीड़ा अधिक मालूम हो और गरमी के दिन हों तो ठंढे पानी से कई बार स्नान करना चाहिए। ठंढा पानी बार-बार पीना चाहिए।

इस बात का ध्यान रहे कि बरफ डालकर जल को कभी ठंढा न किया जाय। सिर की पीड़ा को शान्त करने के लिए

मस्तक पर ठंढे पानी की पट्टियाँ कुछ समय तक रखनी चाहिए और इस प्रकार दिन में कई बार करना चाहिए।

शरीर में गरमी—दूसरे कष्टों के साथ-साथ शरीर में गरमी की वृद्धि होती है और वह गरमी बढ़कर कभी-कभी साधारण ज्वर के रूप में बदल जाती है। लेकिन इसे ज्वर न समझना चाहिए।

ज्वर की यह गरमी अपने आप दूसरे दिन तक शान्त होती हुई दिखायी देती है। उपवास के साथ ठंढा पानी पीने और ठंढे पानी में स्नान करने के जो उपचार बताये गये हैं, वे स्वयं शरीर के इस बढ़ते हुए उत्ताप को शान्त करने की चेष्टा करते हैं। यदि दूसरे दिन तक उसमें कोई कमी न हो तो पेड़ू पर ठंढे पानी की पट्टियाँ रखनी चाहिए। दिन में कई बार ऐसा करने से शरीर की बढ़ी हुई गरमी अपने आप कम हो जायगी।

उलटी होना—आरम्भ में उलटी होना अथवा जी मचलाना इस बात की सूचना देता है कि शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य का संचय अधिक है। बार-बार ठंढा पानी पीने से और ठंढे पानी में नहाने से उसकी तेजी में कमी हो जानी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो कागजी नीबू किसी काँच या पत्थर के बरतन में निचोड़ कर दो-दो अथवा तीन-तीन घण्टे के बाद पीना चाहिए।

कुछ रोगियों को लम्बे उपवासों में उलटी होने और जी मचलाने का कष्ट अधिक बढ़ जाता है और वह कई-कई दिनों तक चला करता है। इस प्रकार की उलटी कभी-कभी हरी और पीली होती है। इस प्रकार की अवस्था उत्पन्न होने पर समझ लेना चाहिए कि शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य की अधिकता है और बहुत दिनों से उसका संचय हो रहा है। उपवास के उपचारों के द्वारा यदि उसमें कोई लाभ न मालूम हो तो उपवास

के विषय में किसी अनुभवी विद्वान से परामर्श करना चाहिए। उलटी होने के बाद प्रत्येक समय मुख को खूब साफ करके ठंढा पानी पीना चाहिए।

आँखों में जलन—विकारों की अधिकता में आँखों में जलन भी होती है और कभी-कभी यह जलन अधिक बढ़ जाती है। उपवास के उपचारों द्वारा इसका शमन अपने आप होने देना चाहिए। पीने और नहाने में ठंढे पानी के प्रयोग करने के साथ-साथ विश्राम करना चाहिए और ताजी वायु का सेवन करना चाहिए। रात को भलीप्रकार सोने से भी आँखों की जलन में कमी हो जाती है।

हिचकी आना—इन दिनों में किसी-किसी को हिचकी आने की शिकायत हो जाती है। उपवास के दिनों में जो अनेक प्रकार के प्रकोप उत्पन्न होते हैं उनमें से एक यह भी है। शरीर के भीतर जब पित्त की अधिकता होती है, उस समय हिचकी अधिक मात्रा में आती है। यों तो उपवास के साथ जो उपचार चलते हैं, उनके द्वारा इन उपद्रवों को जल्दी ही शान्त हो जाना चाहिए। फिर भी यदि हिचकी का आना अधिक मालूम हो तो ठण्ढे जल के स्नान और दिन में दो बार अथवा तीन बार हिप बाथ (कटि स्नान) लेना चाहिए।

चक्कर आना—उपवास के दिनों में कुछ लोगों को चक्कर आने लगते हैं। इनके सम्बन्ध में लोगों को बड़ा भ्रम है। प्रायः सभी लोगों का ख्याल है कि कमजोरी से चक्कर आते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। उपवास के अतिरिक्त वैसे भी कभी-कभी लोगों को चक्कर आते हैं। इस प्रकार की शिकायत स्त्रियों को अधिक होती है और यह भी देखा जाता है कि जिनको इस प्रकार की शिकायत होती है, वे दुबले-पतले शरीर के होते हैं।

यही कारण है कि लोग सहज ही विश्वास कर लेते हैं कि चक्करों के आने का कारण कमजोरी है। मुझे तो आश्चर्य उस समय मालूम होता है, जब इनके सम्बन्ध में कोई चिकित्सक अथवा वैद्य कमजोरी का कारण बताता है।

उपवास के कारण अथवा बिना उपवास के, जब कभी चक्कर आये तो समझ लेना चाहिए कि शरीर में विजातीय द्रव्य की अधिकता है और उन्हीं के उभार में चक्कर आने लगते हैं। यह भी होता है कि उपवास न करने से और खाना बराबर खाते रहने से शरीर के भीतरी अंगों को विजातीय द्रव्य के निकालने का अवसर नहीं मिलता, इसलिए एकत्रित विकार और विष दबा रहता है। उपवास आरम्भ करते ही वह सब एक साथ निकलना आरम्भ होता है।

उपवास के दिनों में इन चक्करों से घबराना नहीं चाहिए। चक्कर आने पर ठण्ढे स्थानों में और खुली वायु में अधिक विश्राम लेना चाहिए। ठण्ढा पानी अधिक पीना चाहिए। पीने के पानी में नीबू मिला लेने से अधिक लाभ होता है। इस दशा में ठण्ढे जल में स्नान करना और मौसिम के अनुसार कई बार स्नान करना जरूरी है। यदि सरदी के दिन हों तो कई बार स्नान न करके ठण्ढे जल से सिर को बार-बार धोना चाहिए और ऐसे स्थान पर लेट कर खूब विश्राम करना चाहिए जहाँ ताजी वायु मिलती हो। इससे बड़ी शान्ति मिलेगी।

कमजोरी का बढ़ना—इस प्रकार के सभी प्रकोप और उपद्रव शरीर के भीतर एकत्रित विजातीय द्रव्य के कारण होते हैं, जिनका उभार उपवास के साथ-साथ शुरू होता है। इनमें घबराने की बात नहीं है। कमजोरी के सम्बन्ध में सत्य की अपेक्षा भ्रम और संदेह अधिक काम करता है।

लोगों का यह विश्वास है कि भोजन बन्द कर देने से कम-

जोरी बढ़ती है। इस विश्वास के साथ ही जब वे उपवास आरम्भ करते ही शरीर में उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को देखते हैं तो कमजोरी के सम्बन्ध में उनका विश्वास बढ़ जाता है। परन्तु यह बहुत सही नहीं है।

छोटे और सरल उपवासों में कमजोरी के बढ़ने का कोई कारण नहीं होता। प्रायः सभी इस विषय के अधिकारियों ने बताया है कि तीन, पाँच, सात दिनों के उपवासों में कमजोरी नहीं बढ़ती। बल्कि उपवासी का वजन बढ़ जाता है, इसलिए इस प्रकार के उपवासों में कमजोरी पैदा होने पर सन्देह न करना चाहिए।

लम्बे उपवासों में कमजोरी बढ़ती है और वजन कम होता जाता है, परन्तु उसके सम्बन्ध में उपवासी को न चिन्ता करना चाहिए और न सन्देह। उसे समझ लेना चाहिए कि ऐसा होना स्वाभाविक है। इसलिए उपवास को नियमित रूप से निर्धारित समय तक चलने देना चाहिए।

नाड़ी की चाल में कमी—उपवास के दिनों में नाड़ी की चाल में अन्तर पड़ जाना एक स्वाभाविक बात है। यह अन्तर दोनों बातों में होता है। नाड़ी की गति धीमी भी पड़ सकती है और कभी-कभी वह तेज भी हो जाती है। इसलिए उसमें घबड़ाने की बात नहीं है।

उपवासी को यह जानने की आवश्यकता है कि पुरुष की नाड़ी की गति मिनट में ७२ और स्त्रियों की नाड़ी की गति ८० होती है। यह गति धीमी होने पर ६०, ५०, ४० तक हो जाती है और जब नाड़ी की गति तेज होने लगती है तो १००, ११०, १२० और कभी-कभी इससे भी अधिक हो जाती है। ऐसा कभी-कभी होता है।

नाड़ी की गति क्षीण होने पर यदि ५० तक भी आ जाय तो चिन्ता करने का कोई कारण नहीं होता। उपवास चिकित्सा के अधिकारी विद्वानों का कहना है कि यदि नाड़ी की गति धीमी होकर ४० तक भी पहुँच जाय और उसकी इस कमी के साथ शरीर में कुछ दूसरे अवाञ्छनीय लक्षण न पैदा हों तो किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती।

नाड़ी की गति अधिक क्षीण होने पर यदि पैरों के तलुवे ठंढे मालूम हों और होठों का स्वाभाविक रंग बदल जाय तो चिन्ता की बात जरूर होती है। लेकिन इस प्रकार की दशा छोटे और सरल उपवासों में कभी नहीं होती। लम्बे उपवासों में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न भी हो सकती है।

ऐसे अवसरों पर हृदय को शक्ति पहुँचाने के लिए कुछ उपाय हैं और वे अधिक महत्वपूर्ण हैं। निम्नलिखित तरीकों से उपवासी को अपना हृदय सबल बनाना चाहिए—

१—मन में कमजोरी का भाव न उत्पन्न होने दें और उपवास की इस स्वाभाविकता पर पूरा विश्वास रखें।

२—उपकास के दिनों में यथाशक्ति परिश्रम करे। मन के भावों को बदलने के लिए ऐसी बातें करे अथवा सुने, जिससे मन को दृढ़ता मिलती हो।

३—स्वच्छ और ताजी वायु का सेवन करे।

४—आवश्यकता के अनुसार शान्तिपूर्वक विश्राम करे।

५—नाड़ी की गति अधिक क्षीण पड़ने पर यदि शरीर की शाक्तियाँ प्रतिकूल न पड़ती हों तो उपवासी को हलका-सा कोई व्यायाम करना चाहिए। यदि शक्ति अनुकूल न पड़े तो गर्म कम्बल ओढ़ कर शरीर में गरमी पहुँचानी चाहिए। परन्तु मुँह न ढँकना चाहिए। जिस कमरे में लेट कर वह ऐसा करे,

उसकी सब खिड़कियाँ ताजी वायु आने के लिए खुली रहनी चाहिए।

६—यदि नाड़ी की गति अधिक तीव्र हो जाय तो १२० तक घबराना नहीं चाहिए और यदि इससे भी तेज होती हुई दिखाई दे तो ठंढे पानी में स्नान करना चाहिए और हिप-बाथ लेना चाहिए। ऐसा करने से नाड़ी की तेजी मध्यम हो जायगी। हिप-बाथ देने का नियम 'एनिमा लेने की विधि' नामक परिच्छेद में लिखा गया है।

खुजली पैदा होने पर—विजातीय द्रव्य जब शरीर से निकलने लगता है तो अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा करता है। उनमें से एक खुजली भी है। कभी-कभी उपवासी को इसका भी कष्ट हो जाता है और इतने जोर की खुजलाहट पैदा होती है, जो सहन नहीं होती। शरीर को जितना ही खुजलाया जाता है, उतनी ही खुजली बढ़ती है और शरीर से आग निकलती हुई मालूम पड़ती है।

ऐसे समय पर खुजली के स्थान पर ठंढे पानी की पट्टियाँ रखने से तुरन्त लाभ होता है। अगर पूरे शरीर में खुजली बढ़ जाय तो मुलायम कपड़े की चादर को ठंढे पानी में खूब भिगोकर गले से नीचे पूरे बदन में लपेट लेना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर लगभग पन्द्रह मिनट के बाद गीली चादर को हटाकर और उसे निचोड़कर फिर ठंढे पानी में भिगोना चाहिए और उसका हलका-सा पानी निचोड़ कर उस गीली चादर को पहले की भाँति फिर लपेट लेना चाहिए। इस प्रकार गीली चादर लपेटने के ऊपर कम्बल ओढ़ लेना चाहिए। ऐसा करने से खुजली निश्चित रूप से शांत हो जायगी।

धड़कन और घबराहट—लम्बे उपवास में कभी-कभी दिल की धड़कन और हृदय में घबराहट का पैदा होना स्वाभाविक

हो जाता है। इनके पैदा होने का कारण उपवास नहीं, बल्कि विजातीय द्रव्य का निकलना है। इन दोनों बातों को शांत करने के लिए नीचे लिखे हुए उपायों का आश्रय लेना चाहिए—

१—लम्बे उपवासों में शांति और विश्राम का मिलना अत्यन्त आवश्यक है। किसी प्रकार की भी अशान्ति रहने से हृदय में घबराहट का पैदा होना अथवा दिल में धड़कन होना कभी-कभी स्वाभाविक हो जाता है। इसलिए इन दिनों में पूर्ण शांति और विश्राम लेना चाहिए।

२—प्रसन्न रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

३—यदि ऊपर की दोनों परिस्थितियों में भी धड़कन और घबराहट पैदा हो तो शांति पूर्वक विश्राम करने के साथ-साथ एक बार में एक तोला शुद्ध शहद लेना चाहिए। इससे धड़कन और घबराहट में तुरन्त लाभ होता है। आवश्यकता पड़ने पर चौबीस घण्टे में दो-तीन बार शहद लिया जा सकता है। लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि शहद शुद्ध और यथा सम्भव ताजा हो। बहुत दिनों का रखा हुआ शहद अधिक काम नहीं करता।

उपवास के दिनों में जो कष्ट और उपद्रव पैदा होते हैं, वे सभी को नहीं होते और सभी उपद्रव किसी एक ही व्यक्ति को नहीं होते। ऊपर उनका उल्लेख इसलिए किया गया है कि जिससे उपवासी को उन बातों की पूरी जानकारी हो जाय। जब मनुष्य का ज्ञान होता है तो उसमें विश्वास उत्पन्न होता है। विश्वास होने पर घबराहट नहीं पैदा होती।

साधारण उपद्रवों में उनको अलग से शांत करने का उपाय नहीं खोजना चाहिए। उपवास के साथ-साथ, जो उपचार चलते हैं, वे सभी उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को स्वयं शांत करने का काम करते हैं। नित्य एनिमा लेना, ठंढा पानी पीना, बार-बार पीना और अधिक पीने की इच्छा रखना, ठंढे जल में स्नान

करना, प्रसन्न रहना, परिश्रम करना, स्वच्छ वायु का सेवन करना और पूर्ण रूप से विश्राम लेना आदि-आदि जितनी भी बातें उपवास करने के नियमों में बतायी गयी हैं, उनका भली प्रकार पालन करना, उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को शांत करने के लिए अत्यन्त आवश्यक उपचार हैं।

इस बात का भी विश्वास रखना चाहिए कि उपवास के आरम्भ करते ही जो कष्ट और 'उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वे दूसरे और तीसरे दिन तक अपने आप शांत हो जाते हैं।

---

[१५]

उपवास से कब लाभ नहीं होता

उपवास प्रत्येक अवस्था में उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए उसके सम्बन्ध में कभी भी प्रश्न ही नहीं पैदा होता कि उपवास से लाभ होगा अथवा नहीं। उपवास-चिकित्सकों के संरक्षण में संसार के भिन्न-भिन्न देशों में हजारों और लाखों आदमी वर्ष में उपवास करते हैं और उन सभी को लाभ होता है। यद्यपि कुछ ऐसे रोग होते हैं, जिनमें उपवास नहीं कराये जाते और उपवासों से उन रोगों में लाभ नहीं होता। उनके सम्बन्ध में उपवास के चिकित्सकों ने सदा स्पष्ट बताया है और इस पुस्तक के आगामी पृष्ठों में मैं भी इस बात पर प्रकाश डालूँगी कि किन रोगों में उपवास से लाभ होता है और किन में नहीं।

जिन रोगों में उपवास का प्रभाव नहीं पड़ता, अगर उन थोड़े से रोगों को छोड़ दिया जाय, तो उपवास के संबंध में

कभी किसी अवस्था में किसी को संदेह करने की आवश्यकता नहीं है।

इस दशा में भी कुछ लोग ऐसे मिलते हैं जो कहा करते हैं कि 'हमने तो उपवास किया था, लेकिन हमें कुछ लाभ नहीं हुआ।' लोगों की इन बातों के कारण मेरे लिए आवश्यक हो गया है कि जिन परिस्थितियों में उपवास असफल होता है, मैं उन पर यहाँ प्रकाश डालूँ। वे परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार हैं—

जीवन-शक्ति के क्षय हो जाने पर—यह सभी को मालूम है कि रोगी होने पर लोग दूसरे चिकित्सकों की दवायें करते रहते हैं। और यह पहले बताया जा चुका है कि प्रचलित दूसरी चिकित्साओं के द्वारा जिस प्रकार रोगों को दबाने की चेष्टा की जाती है, उसमें शरीर के विजातीय द्रव्य को निकलने का अवसर नहीं मिलता। होता यह है कि कभी-कभी रोग दब जाता है, जिसे लोग सेहत होना समझते हैं और उसका फिर उभार होता है। फल यह होता है कि दवाओं का सिलसिला जारी रहता है और रोग दबते और उभरते रहते हैं।

इसलिए उन औषधियों का प्रभाव शरीर पर यह पड़ता है कि एक तो विजातीय द्रव्य होता ही है, औषधियों के द्वारा एक दूसरा विजातीय द्रव्य शरीर में प्रवेश करता रहता है। इसके परिणामस्वरूप जीवन शक्ति का क्षय होता रहता है। जब यह दशा अधिक भीषण हो जाती है और जीवन-शक्ति के अभाव में रोगी मरने के समीप पहुँच जाता है तो उस दशा में उपवास से लाभ नहीं होता।

उपवास में विश्वास और दृढ़ता की कमी—शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास करना बहुत आसान भी है

और अत्यन्त कठोर भी है। जिन्हें इसका पूरा ज्ञान होता है और ज्ञान होने के कारण जिनका विश्वास और दृढ़ता काम करती है, उपवास करना उनके लिए बहुत सहज होता है। लेकिन जो उपवास के उद्देश्य को ठीक तौर पर समझते नहीं हैं, न समझने की दशा में उपवास पर उनमें विश्वास की कमी रहती है, इस प्रकार के लोगों के लिए उपवास करना कठिन साध्य होता है।

उपवास का लाभ वही उठा सकता है, जो उसे समझता है और उस पर विश्वास करता है। विश्वास होने पर ही दृढ़ता उत्पन्न होती है। बिना विश्वास और दृढ़ता के उपवास न तो किया जा सकता है और यदि किया गया तो उसका लाभ नहीं उठाया जा सकता।

इसके सम्बन्ध में मुझे अनेक प्रकार के अनुभव हैं। यहाँ पर मैं उन स्त्री-पुरुषों का उल्लेख नहीं करना चाहती जिन्होंने अपनी दृढ़ता के कारण भयानक रोगों में आशातीत सफलता प्राप्त की है। परन्तु मैं उन रोगियों के सम्बन्ध में यहाँ पर संकेत करना चाहती हूँ, जिन्होंने अपनी दृढ़ता के अभाव में उपवास का लाभ नहीं उठाया।

जिन रोगियों ने उपवास आरम्भ करके उसका लाभ नहीं उठाया, उनके उदाहरण अलग-अलग न देकर मैं एक साथ यहाँ पर सब को लिख देना चाहती हूँ। मुझे ऐसे भी रोगी मिले हैं कि जिन्होंने बड़े साहस के साथ उपवास आरम्भ किया है और तीसरे या चौथे रोज उन्होंने उपवास को तोड़ दिया है। पूछने पर मालूम हुआ कि चक्कर अधिक आने के कारण उपवास तोड़ना पड़ा। अथवा सिर में दर्द अधिक पैदा हुआ तो फिर खाना खा लिया। उनको समझने की चेष्टा करने पर

मैंने जाना कि 'भोजन न करने से कमजोरी बढ़ती है और उसी से चक्कर आने लगे थे' ऐसा उनका विश्वास है।

इस प्रकार की घटनाओं से मेरा अनुभव यह हुआ कि उपवास का लाभ ऐसे रोगी उसी दशा में उठा सकते हैं कि जब उनको स्वयं इस विषय में पूरा विश्वास होता है अथवा इस प्रकार के रोगी, उपवास-चिकित्सक के अधिकार में पूरी तौर पर आ जाते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो ऐसे रोगियों को उपवास से लाभ नहीं हो सकता।

अनियमित उपवास—उपवास का लाभ उसी दशा में होता है, जब विश्वास पूर्वक उसको आरम्भ किया जाय और उसके नियमों का पालन किया जाय। यदि ऐसा नहीं किया गया तो जिस उद्देश्य से उपवास किया गया है, उसमें लाभ न होगा।

उपवास का एक सीधा-सा उद्देश्य है और उसकी पूर्ति के लिए उसके कुछ नियम हैं। दोनों को समझना पड़ता है—दोनों पर विश्वास करना पड़ता है। दृढ़ता ही हमारी सफलता है। जिसमें दृढ़ता का अभाव होता है। वह किसी भी कार्य में कभी सफल नहीं हो सकता।

शरीर के विजातीय द्रव्य को निकालने का कार्य उपवासों के द्वारा होता है और उपवास को शक्ति देने के लिए उसके नियमों का पालन करना पड़ता है। उपवास के दिनों में शरीर के भीतर पाचन-क्रिया बन्द हो जाती है। और उपवास आरम्भ करते ही शरीर के विभिन्न मार्गों से विजातीय द्रव्य का निकलना आरम्भ हो जाता है। इसलिए उपवास आरम्भ करके भोजन की कोई भी चीज खाने के काम में नहीं लाई जा सकती। यह उसका एक कठोर नियम है।

इस नियम का अर्थ यह है कि उपवास के दिनों में, पाचन-क्रिया के स्थगित होने पर यदि भोजन की कोई चीज खा ली जायगी तो पाचन क्रिया को अपना कार्य आरम्भ कर देना पड़ेगा और शरीर से विजातीय द्रव्य के निकलने का कार्य जो आरम्भ हुआ था, वह बन्द हो जायगा। इस दशा में उपवास का लाभ नहीं हो सकता।

समय से पहले उपवास तोड़ना—उपवास तोड़ने का एक समय होता है और उपवास उसी दशा में तोड़ा जाना चाहिए जब उपवास तोड़े जाने की सूचना शरीर के लक्षणों के द्वारा मिलने लगे।

इसलिए उपवास आरम्भ करने का कार्य जितनी जिम्मेदारी का कार्य होता है, उसके तोड़ने का कार्य उससे भी अधिक गुरुतर होता है और यही कारण है कि लम्बा उपवास बिना किसी उपवास के अधिकारी विद्वान् की सहायता के बिना आरम्भ करने की सलाह नहीं दी जाती।

उपवास जिस उद्देश्य से किया जाता है, उसकी पूर्ति हो जाने पर उपवासी का शरीर स्वयं उसकी सूचना देता है और ऐसे लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं जिनसे स्पष्ट पता चलता है कि उपवास तोड़ा जाना चाहिए। यदि उस समय के आने के पहले ही उपवास तोड़ दिया जाता है तो उपवास का लाभ नहीं हो सकता, यह अत्यन्त स्वाभाविक है।

उपवास तोड़ने पर भोजन में भूल—यह निश्चित है कि उपवास का तोड़ना एक गम्भीरता का कार्य है। उसके कुछ नियम हैं और वह उन नियमों के साथ बँधा हुआ है।

उपवास के दिनों में बड़ी सावधानी के साथ उसके नियमों का पालन करना पड़ता है और उसके तोड़ने के समय उसके

जो नियम हैं, उनके पालन करने में बड़ी कठोरता से काम लेना पड़ता है। यह कठोरता बहुधा उपवासी से सम्भव नहीं होती। इसीलिए लम्बे उपवास का संरक्षण उसके किसी अधिकारी को देना पड़ता है। वह अधिकारी इस बात का ज्ञान रखता है कि उपवास कैसे तोड़ा जाय और तोड़ने पर उपवासी के पेट में कौन-सी चीज पहुँचायी जाय।

छोटे और सरल उपवासों में भी नियमित रूप से ही उपवास तोड़ना पड़ता है और निर्धारित व्यवस्था के अनुसार उपवासी को खाने की चीजें दी जाती हैं। बड़े उपवासों में यह उत्तरदायित्व और भी गम्भीर हो जाता है, जैसा कि इस पुस्तक में आगामी परिच्छेद में लिखा गया है।

उपवास तोड़ने पर भोजन की सावधानी कई दिनों तक चलती है। छोटे उपवासों में यदि उसकी परवा न की जाय तो उपवास के लाभों से वंचित होना पड़ता है। और लम्बे उपवासों में यदि उस सावधानी की उपेक्षा की जाय तो लाभ से वंचित होने के साथ-साथ संकट का समय भी उपस्थित हो सकता है।

इस प्रकार की परिस्थितियों में उपवास का लाभ नहीं हो सकता। इसमें उपवास का कोई अपराध नहीं है। अपराध है उपवासी के साहस और उसकी दृढ़ता का, जिसके अभाव में यह परिस्थिति उत्पन्न होती है।

———

[१६]

उपवास कब और कैसे तोड़ा जाय ?

मैंने पिछले परिच्छेद में बताया है कि उपवास आरम्भ करने की अपेक्षा अंत करना अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। इसीलिए पहला प्रश्न पैदा होता है कि उपवास कब तोड़ा जाय ?

इस प्रश्न का निर्णय करने के पहले यह समझने की जरूरत होती है कि उपवास किसलिए किया गया था ? जब उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है तो वही समय उपवास तोड़ने का समय होता है।

उपवास दो तरह से आरम्भ होते हैं। एक तो यह कि उसके लिए पहले से ही दिनों का निश्चय कर लिया जाता है, अर्थात् यह मान लिया जाता है कि तीन दिनों का, पाँच दिनों का, सात दिनों का अथवा इससे अधिक दिनों का उपवास करना है। इस प्रकार जब पहले से ही दिनों का निश्चय होता है तो उस अवधि के बीत जाने पर उपवास को तोड़ देना चाहिए।

उपवास आरम्भ करने का दूसरा तरीका यह होता है कि उसका प्रारम्भ एक उद्देश्य को लेकर किया जाता है। जैसे किसी ने यह निश्चय किया है कि उपवास करके हमें रोगों का अन्त करना है और शरीर से विजातीय द्रव्य का नाश करना है। इस दशा में दिनों का निश्चय नहीं होता और यह देखना पड़ता है कि उपवास को कब तोड़ा जाय।

जब किसी उद्देश्य को लेकर उपवास किया जाता है तो उसकी पूर्ति को देखकर उपवास तोड़ना चाहिए। उपवास के दिनों

में पैदा होने वाले कष्ट और उपद्रव को देखकर कभी उपवास नहीं तोड़ा जाता।

यदि शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास आरम्भ किया गया है तो देखना चाहिए कि जब शरीर से विजातीय द्रव्यों का अन्त हो जाय तो उपवास तोड़ देना चाहिए। इसकी पहचान निम्नलिखित लक्षणों से होती है—

१—जब शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य का संचय होता है तो जीभ पर मल की एक तह जम जाती है। यह तह सफेद, पीली, मैली, काली और दूसरे रंगों की भी होती है। शरीर में जब विकार नहीं होते तो उस दशा में जीभ लाल वर्ण की स्वच्छ और साफ रहती है।

२—शरीर के भीतर एकत्रित विकारों के कारण मुँह से निकलने वाली वायु में एक प्रकार की दुर्गन्धि पायी जाती है। जब शरीर निर्विकार हो जाता है तो उस तरह की गन्ध अपने आप दूर हो जाती है।

३—शरीर में विजातीय द्रव्य की अवस्था में भूख धीरे-धीरे नष्ट होने लगती है। परन्तु उसको न समझने के कारण मनुष्य तरह-तरह की चीजों से उसे उकसा कर हठ पूर्वक खाने की चेष्टा किया करता है। उपवास आरम्भ करने पर सच्ची भूख नहीं मालूम होती। उसी को भूख मालूम होती है, जो भूख के लिए नहीं, बल्कि खाने की आदत के लिए भोजन किया करता है। यह झूठी भूख भी उपवास के तीसरे दिन तक मिटने लगती है और उस समय तक सच्ची भूख उत्पन्न नहीं होती, जब तक शरीर विजातीय द्रव्य से पूर्णरूप में निर्विकार नहीं हो जाता।

जो उपवास शरीर की शुद्धि के लिए किये जाते हैं, उनमें उपवास तोड़ने के समय की सूचना ऊपर बताये गये तीनों

लक्षण देने लगते हैं। जीभ स्वच्छ और साफ हो जाती है। भीतर से निकलने वाली साँस में किसी प्रकार की दुर्गन्धि नहीं रह जाती और इस शुद्धि की अवस्था में जो क्षुधा जाग्रत होती है, वह बड़ी सुन्दर और मनोहर मालूम होती है। इन तीनों लक्षणों के आधार पर सावधानी के साथ उपवास तोड़ने के समय का अनुमान लगा लेना चाहिए। वास्तव में प्रकृति स्वयं बताने लगती है कि अब उपवास की आवश्यकता नहीं है। जब ऐसा मालूम हो, उसके बाद उपवास तोड़ देना चाहिए।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि उपवास कैसे तोड़ा जाय? यहाँ पर यह याद रखने की आवश्यकता है कि यदि उपवास तोड़ने में नियमों से काम न लिया गया और जरा भी मनमानी की गयी तो उपवास से होने वाला लाभ तो मिट्टी में मिल ही जायगा, स्वास्थ्य को बुरी तरह से धक्का पहुँचेगा।

मैं यहाँ पर स्पष्ट बता देना चाहती हूँ कि लम्बा उपवास आरम्भ से अन्त तक बड़ी सावधानी चाहता है। उपवास तोड़ने के समय बड़े उत्तरदायित्व से काम लेना पड़ता है। अन्यथा उस समय की भूलों के परिणामस्वरूप उपवासी की मृत्यु भी हो सकती है।

उपवास तोड़ने में मीठे नीबू, संतरे, नारंगी, चकोतरे और मौसम्मी का रस लिया जा सकता है। इस बात का ध्यान रहे कि पहली बार आधे चकोतरे अथवा एक सन्तरे से अधिक रस नहीं लेना चाहिए।

दूसरे दिन जो रस लिया जाय, उसकी मात्रा बढ़ायी जानी चाहिए। अर्थात् दिन में तीन-चार बार उस प्रकार का कोई भी रस लिया जा सकता है और एक बार में उस रस का परिमाण पाव-भर तक हो सकता है।

तीसरे दिन उसकी मात्रा और भी बढ़ायी जानी चाहिए। जिस फल का रस पहले दो दिनों में लिखा गया है, उसका अथवा उन दूसरे फलों का गूदा, जो ऊपर लिखे गये हैं, खाया जा सकता है। चौथे दिन फलों के साथ कच्ची तरकारियाँ भी ली जा सकती हैं। जो तरकारियाँ ली जायँ, वे यथासम्भव हरी और ताजी हों। इसके लिए हरी पत्तियों के ताजे शाक अधिक उपयोगी रहेंगे।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उपवास के बाद खाने में जल्दबाजी करना अथवा बताये हुए नियमों से अधिक खाना सहज ही संकटपूर्ण हो सकता है। इसलिए लम्बे उपवास के बाद एक सप्ताह तक फलों का रस, फल, हरे शाक और मेवे, जैसे कि ऊपर लिखे गये हैं, लेने चाहिए।

इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि उपवास का लाभ उसी दशा में हो सकता है, जब भोजन के नियमों में किसी प्रकार की भूल न हो। छोटे उपवासों की अपेक्षा बड़े उपवासों में नियमों का पालन बड़ी कठोरता के साथ उपवासी को करना पड़ता है।

उपवास तोड़ने के पश्चात् कई दिनों तक फलों के रस से आरम्भ करके फलों और हरे शाकों पर रहना चाहिए। तीसरे या चौथे दिन से कुछ सूखे मेवे भी शामिल किये जा सकते हैं। हरे शाकों में पालक विशेष रूप से उपयोगी है।

उपवास के बाद खोये हुए स्वास्थ्य को जल्दी से प्राप्त करने के लिए पौष्टिक भोजन लेने की कोशिश एक भयानक भूल का काम करेगी।

उपवास तोड़ने के बाद एक सप्ताह तक रेचक औषधियों अथवा एनिमा के द्वारा दूसरे या तीसरे दिन उस दशा में आव-

श्यक हो जाता है, जब नित्य नियमित रूप से मल की सफाई नहीं होती।

छोटे उपवासों में भी, जो तीन दिन से लेकर सात दिनों तक होते हैं, उपवास तोड़ने पर फल ही लेना चाहिए। पहली बार एक साथ कम परिमाण में लेकर चौबीस घंटे में थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार तक लिया जा सकता है। दूसरे दिन फलों के साथ थोड़ी मात्रा में हर एक शाक को भी शामिल किया जा सकता है।

इस प्रकार छोटे उपवासों में भी उपवास तोड़ने पर एक सप्ताह तक भोजन में नियंत्रण रखना लाभदायक होता है। यदि उपवास तोड़ने के बाद छोटे उपवासों में भी एक सप्ताह तक फल और शाकों का ही प्रयोग किया जाय तो अधिक अच्छा रहेगा।

पिछले पृष्ठों में यह लिखा जा चुका है कि फलों के अभाव में मक्खन निकाला हुआ दूध और मट्ठा काम में लाना चाहिए। उसके साथ हरे शाकों और ताजी तरकारियों का लेना अधिक अच्छा रहेगा। यदि इस प्रकार का दूध और मट्ठा थोड़ी मात्रा में लेने पर भी अनुकूल न पड़े और फल प्राप्त न हों तो हरे शाकों का रस काम में लाना चाहिए। परन्तु किसी भी दशा में आरम्भ के तीन दिनों में नियमों के अनुसार जो कुछ भी दिया जाय, उसकी तादाद अधिक न होने पावे। क्योंकि कम से लाभ हो सकता है और जरा भी अधिक हो जाने से उपवासी के जीवन में संकट पैदा हो सकता है।

लम्बा उपवास और वह उपवास, जिसमें पानी और नींबू के सिवा और कुछ खाने को नहीं दिया गया, संतरे और नारंगी के रस से ही भंग किया जाना चाहिए। उसके बाद लिखे गये

नियमों के अनुसार खाने की चीजों की मात्रा बहुत धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।

उपवास उपयोगी होने पर भी बार-बार नहीं करना चाहिए। वह तो शरीर के विकारपूर्ण होने पर एक आवश्यकता की साधना है। बार-बार का उपवास इस बात का प्रमाण है कि उपवासी का जीवन नियमित, नियंत्रित और संयत नहीं है। यह बात किसी के लिए भी लज्जाजनक है। इसलिए इतना जान लेना चाहिए कि उपवास थोड़े-थोड़े दिनों में न होना चाहिए। इसलिए कि जितने ही अधिक दिनों में उपवास की आवश्यकता पड़ती है, उतना ही अधिक उपवासी के नियमित जीवन का प्रमाण मिलता है।

उपवास के बाद श्वेतसार और प्रोटीनवाली चीजें यदि खाने में न देकर हरी और ताजी तरकारियाँ तथा ताजे फल उपवासी को खिलाये जायँ तो शाकों का लवण और फलों का रस शरीर और मस्तिष्क के लिए अमृत के समान उपयोगी सिद्ध होता है। ऐसा करके ईसा ने एक मनुष्य के उन्माद रोग को सेहत किया था।

सभी प्रकार के उपवासों में उपवासी का वजन घटता है और उसकी शक्तियाँ नष्ट होती हैं। इस विषय में विद्वानों का कहना है कि उपवास को ठीक तौर पर चलाने की अवस्था में उपवासी का वजन रोजाना एक पौण्ड के हिसाब से घटता है। यह क्रम उपवास तोड़ने के बाद भी कुछ दिनों तक बराबर चलता रहता है। उपवास के बाद भोजन में मिलने वाले द्रव्यों के अनुसार घटने वाला वजन क्रमशः कम होता जाता है। उपवास-काल में घटे हुए वजन को पूरा करने में उसके दूने से भी अधिक दिन लग जाते हैं। अगर उपवासी अधिक निर्बल और वृद्ध होता है तो इस पूर्ति के लिए और भी अधिक दिन चाहिए।

इस प्रकार जो वजन घट जाता है और शक्ति नष्ट हो जाती है, उसकी पूर्ति आवश्यक होती है। यह परिस्थिति विशेषकर लम्बे उपवासों में पैदा होती है।

कुछ अधिकारियों का कहना है कि उपवास तोड़ने के बाद प्रथम सप्ताह में उपवास के दिनों से भी निर्बलता कुछ अधिक मालूम होती है, यद्यपि उस समय उपवासी को भोजन में कुछ न कुछ मिलने लगता है। इसका कारण यह है कि उपवास के दिनों में शरीर की भीतरी क्रियाओं में बड़ा अन्तर आ जाता है। पाचन-क्रिया सो जाती है और उसका कार्य बिलकुल बन्द हो जाता है। दूसरी क्रियायें भी विश्राम ले लेती हैं और शरीर के भीतर विष के निकालने का कार्य बड़ी तेजी के साथ चलता रहता है। उपवास तोड़ने पर सोई हुई शक्तियाँ फिर धीरे-धीरे जाग्रत होती हैं। भोजन की सामग्री पेट में पहुँचने पर पाचन-क्रिया बहुत धीरे-धीरे अपना कार्य फिर आरम्भ करती है और पूरी शक्ति में उसके आ जाने में कभी-कभी दो-दो और तीन-तीन सप्ताह लग जाते हैं। इसलिए लम्बे उपवास में भोजन की सामग्री इस हिसाब से शरीर के भीतर पहुँचनी चाहिए, जिसे पाचन-क्रिया सम्हाल सके और उसे कम-से-कम काम करना पड़े।

घटे हुए वजन और खोयी हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिए उपवास के बाद बड़ी सावधानी से सोचना चाहिए। ऐसे समय पर बिना सोचे-समझे उपवासी को पौष्टिक भोजन की सलाह देना, उसके साथ शत्रुता करना है। बुद्धिमानी के साथ यह सोचने की जरूरत होती है कि भोजन में दी हुई चीज इतनी पाचक और कम मात्रा में हो कि जिसे उपवासी सरलता पूर्वक पचा सके। इसी ख्याल को सामने रखकर उपवास के बाद भोजन में धीरे-धीरे वृद्धि करनी चाहिए। उपवास के बाद फलों

का रस, फल, हरे शाक और कुछ सूखे मेवे इसलिए बताये गये हैं कि उनसे शरीर को शक्ति अधिक मिलती है और पाचन-क्रिया को कार्य बहुत कम करना पड़ता है।

यदि पाचन-क्रिया की शक्ति के विरुद्ध कोई चीज शरीर के भीतर पहुँच जाती है तो बहुधा पाचन-क्रिया का कार्य बन्द हो जाता है और उसके रुकते ही अपच एवं कोष्ट-बद्धता की शिकायत हो जाती है। इस दशा में उपवास के कारण शारीरिक शक्तियों के निर्बल होने से ज्वर आना आरम्भ हो जाता है और यह भी होता है कि पुरानी कोई दबी हुई बीमारी उत्पन्न हो जाती है। यह अवस्था भयानक होती है। इसलिए यह जरूरी है कि शरीर को शक्ति देर में मिले, परन्तु ऐसी कोई चीज न खायी जाय कि जिसे पाचन-क्रिया पचा न सके।

इस देश में लम्बे उपवासों के सम्बन्ध में गांधी जी का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इसलिए यहाँ पर अपने लम्बे उपवास के सम्बन्ध में गांधी जी की लिखी हुई पंक्तियों का उल्लेख करना बड़े काम की बात होगी। उपवास तोड़ने के बाद कुछ दिनों में गांधी जी ने लिखा था—

"मुझे यह ख्याल नहीं कि उपवास के दिनों में मुझे भूख का कष्ट मालूम हुआ था। उपवास तोड़ने के समय मुझे कोई जल्दी नहीं थी। नियत समय से आध घण्टे के बाद मैंने उपवास तोड़ा था।"

"उपवास के दिनों में रोज की तीनों समय की प्रार्थनाओं में मैं सब के साथ शामिल होता था। आखिरी के चार दिनों में तो प्रार्थना के लिए मुझे खाट पर जाना पड़ा था। कोशिश करने पर मैं वहाँ बैठ भी सकता था। लेकिन मैंने उस समय अपनी शक्ति की रक्षा करना ही उचित समझा। मुझे कुछ

अधिक शारीरिक कष्ट भोगना पड़ा हो, यह भी याद नहीं है। मुझे सिर्फ एक ही कष्ट की बात याद है,वह यह कि बार-बार मतली आती थी, जो पानी के घूँट ले लेने से आराम हो जाती थी। नारङ्गी और अंगूर का रस, कुल तीन छटाँक के करीब लेकर मैंने उपवास तोड़ा था। मैंने नारङ्गी भी चूसी थी। दो घण्टे बाद फिर मैंने यही किया और उसमें दस अंगूर भी मिला दिये थे। अंगूर, उसके छिलके को निकाल कर धीरे-धीरे चूसकर खाये थे। फिर कुछ देर बाद एनिमा लेने के बाद उस दिन मैंने तीन छटाँक बकरी का दूध, एक छटाँक पानी मिलाकर पिया था और उसके बाद एक नारङ्गी और दस अंगूर खाये थे। पानी और दूध मिलाकर पका लिया गया था। शाम को मैंने उतना ही दूध पानी मिलाकर फिर लिया था और उसके साथ जितने ही फल सवेरे खाये थे। दूसरे दिन दूध बढ़ाकर ६ छटाँक कर दिया था और उसमें पानी हमेशा मिलाया जाता था। इस प्रकार हमेशा तीन-तीन छटाँक दूध बढ़ाता गया। यहाँ तक कि मैं डेढ़ सेर दूध लेने लगा। पानी तो अब भी उसमें मिलाया जाता है। लेकिन अब दूध की हर एक खूराक में केवल आधी छटाँक पानी मिलाया जाता है। कोई डेढ़ दिन तक मैंने केवल खालिस दूध ही पिया था, लेकिन उससे कुछ भारीपन मालूम होने लगा और उसका कारण खालिस दूध को समझकर फिर दूध में पानी मिलाना आरम्भ किया।"

"उपवास तोड़ने के बाद आज यह बारहवाँ दिन है। अब तक मैंने कोई भी ठोस खाना नहीं खाया है। अब भी फल का कुछ हिस्सा तो उसके रस के रूप में ही लेता हूँ। और पिछले तीन दिनों में मैंने संतरे के साथ अनार, चीकू और पपीता भी लिया है। अधिक से अधिक दूध जो मैंने अब तक लिया है, दो सेर के करीब था। मैं औसतन डेढ़ सेर दूध पीता हूँ और

कभी-कभी मैं उसके साथ थोड़ी-सी डबल रोटी या हलकी सी चपाती भी खाता हूँ।"

"× × इन सात दिनों के उपवास में कोई ९ पौण्ड वजन कम हो गया था। अब मैंने खोया हुआ सारा वजन फिर प्राप्त कर लिया है। × × अब तीन दिन से तो मैं सुबह-शाम नियमित कसरत भी करता हूँ। उसमें मुझे कुछ भी थकान नहीं मालूम होती। बराबर जमीन पर चलने में भी मुझे कोई कष्ट नहीं होता। लेकिन सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने में कुछ जोर पड़ता है। शौच भी नियमित होता है और रात को मैं जब चाहता हूँ सो जाता हूँ।"

"मेरी अपनी राय है कि २१ दिनों के उपवास के कारण या इन ७ दिनों के उपवास में मेरे शरीर को कुछ हानि नहीं पहुँची। ७ दिनों में वजन का घट जाना कुछ चिन्ताजनक अवश्य था। उसका कारण यह था कि मैंने आरम्भ के साढ़े तीन दिनों में कड़ा श्रम किया था।"

उपवास के दिनों में, सर्वसाधारण के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना मैं जरूरी समझता हूँ—

१—शारीरिक और मानसिक श्रम अधिक न करना चाहिए।

२—उपवास के दिनों में खाने-पीने की सभी चीजों को भूल जाना चाहिए।

३—नमक और सोडा डालकर अथवा बिना नमक-सोडा के जितना भी हो सके, थोड़ा-थोड़ा करके पानी पीना चाहिए।

४—रोज गरम पानी में कपड़े को भिगोकर शरीर को साफ करना चाहिए।

५—उपवास के दिनों में रोज एनिमा लेना चाहिए।

६—खुली हवा में सोना चाहिए।

८—सवेरे धूप में खुले बदन बैठना चाहिए। धूप-स्नान और वायु-स्नान उतना ही जरूरी है, जितना कि जल-स्नान।

उपवास तोड़ने के सम्बन्ध में इस परिच्छेद में जितनी बातें लिखी गयी हैं, उन्हें बहुत आवश्यक समझकर किसी भी उपवास को नियमित रूप में स्वीकार करना चाहिए। उपवास को सफल बनाने के लिए यह एक अच्छा मार्ग है।

---

[१७]

रोग और उपवास

'उपवास के द्वारा शरीर के विभिन्न रोगों को सफलता-पूर्वक अच्छा किया जाता है', ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भिन्न-भिन्न देशों में उपवास का महत्व बढ़ रहा है और उसके द्वारा हजारों-लाखों रोगियों को उनके भयानक रोगों से छुटकारा मिलता है। इस दशा में उपवास आज एक अचूक और नवीन चिकित्सा का स्थान ले रहा है।

इतना सब होने पर भी प्रश्न यह होता है कि शरीर और मस्तिष्क के क्या सभी रोग उपवास के द्वारा अच्छे हो सकते हैं? यह प्रश्न यहाँ पर विचारणीय है और इस प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि शरीर की अनेक रोग-मिश्रित व्याधियाँ ऐसी हैं जो उपवास के द्वारा सेहत नहीं होतीं।

प्राचीन ग्रन्थों में रोगों के निवारण के लिए उपवास का विधान बताया गया है। परन्तु वह आजकल की भाँति उपवास की विकसित अवस्था में नहीं है। उन दिनों में जो उपवास

किये जाते थे, उनका दृष्टिकोण पूर्णरूप से धार्मिक और आध्यात्मिक होता था। रोगों के सम्बन्ध में जो उपवास के वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में थोड़े-बहुत मिलते हैं, वे नहीं के बराबर हैं। उनके द्वारा जन-साधारण को कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा। इस लाभ के लिए न तो वे लिखे गये थे और न बताये गये थे। इसलिए कि उस प्राचीन युग में रोगों का कारण पूर्व जन्म के पापों का फल समझा जाता था।

आज का युग दूसरा है। प्राचीन काल की वे सभी बातें आज के नवीन युग में काम की नहीं समझी जाती। प्राचीन युग का ज्ञान इतना पुराना समझा जाता है, कि लोगों के निकट अब विश्वासहीन के रूप में रह गया है।

मनुष्य ने लगातार उन्नति की है और आज वह जीवन के जिस रूप में पहुँच चुका है, वह प्राचीन काल से बिलकुल भिन्न है। यहाँ पर मुझे कवल उपवास के सम्बन्ध में लिखना है। इस विषय में बड़ी खोज से काम लिया गया है और उसमें जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उसमें उपवास को एक सफलता का स्थान दिया गया है।

आज उपवास का महत्व रोगों को मिटाने, शरीर और मस्तिष्क को बल देने और उनको विशुद्ध बनाने के लिए माना जाता है। आज प्रत्येक मनुष्य को बताया जाता है कि वह क्यों रोगी हुआ है और वह स्वयं अपने आपको किस प्रकार रोगों से सेहत कर सकता है?

आज भयानक से भयानक रोग भी प्रारब्ध पर नहीं छोड़े जाते। उनको निर्मूल करने की चेष्टा की जाती है और उनको सेहत करने में सफलता मिलती है।

उपवास की इस महान शक्ति को मानते हुए भी यह बताना आवश्यक है कि कुछ रोगों और व्याधियों में उपवास से लाभ

नहीं होता। इसलिए उपवास के पक्षपातियों को यहाँ लिखी गयी बातें ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिए और उन पर अनुसरण करना चाहिए।

आरम्भ के पृष्ठों में यह लिखा गया है कि मनुष्य जो भोजन करता है, उससे शरीर के भीतर थोड़ी-बहुत मात्रा में विजातीय द्रव्य एकत्रित होता रहता है। उसके विष के द्वारा शरीर में विभिन्न प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। उपवास उस विजातीय द्रव्य को शरीर से निकाल कर शरीर और मस्तिष्क को शुद्ध करता है और पैदा होने वाले रोगों का शमन करता है। इस प्रकार रोगों की जो परिभाषा है, उनको पूर्णरूप से सेहत करने में सफलता मिलती है और इसीलिए निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि उपवास का व्यापक प्रभाव जिस प्रकार रोगों का शमन करता है, उस प्रकार उनका शमन किसी भी दूसरी चिकित्सा के द्वारा नहीं होता।

लेकिन शरीर की कुछ ऐसी व्याधियाँ भी हैं, जो उपवास से सेहत नहीं होतीं। उनके सम्बन्ध में उपवास के विद्वान् अधिकारियों ने स्पष्ट लिखा है और उन्होंने कभी किसी को अन्धकार में नहीं रखा। यहाँ पर मैं साफ-साफ बताने की कोशिश करूँगी कि किस प्रकार के रोग उपवास के द्वारा शीघ्र सेहत होते हैं और किन रोगों पर उपवास को सफलता नहीं मिलती।

इस विषय में कितने ही उपवास के विद्वानों ने बहुत काम की बातें बतायी हैं। मैं उनमें से कुछ लोगों के विचारों का यहाँ पर उल्लेख करूँगी। श्री बरनर मकफैडन ने इसके सम्बन्ध में बड़ी सुन्दर विवेचना की है। वह संक्षेप में इस प्रकार है—

यदि शरीर का कोई अंग रचना की दृष्टि से दोषपूर्ण है तो वह अपना कार्य सही रूप में नहीं कर सकता है। उपवास के द्वारा इस प्रकार के अंगों के दोष को दूर करने में सहायता नहीं

मिलती। बहुधा शरीर के भीतर मल निकालने वाले अंग विकृत पाये जाते हैं, उनको सुधारने में उपवास कोई काम नहीं करता।

यदि किसी कारण से शरीर का कोई भीतरी अङ्ग नष्ट हो गया हो, विकृत हो गया हो और जन्म से अयोग्य पाया जाता हो तो उपवास उसे योग्य नहीं बना सकता।

उपवास विष, विजातीय द्रव्य अथवा विषाक्त द्रव्य से शरीर को मुक्त करता है, जो कोष नष्ट हो जाते हैं, उन्हें शरीर से निकालता है और उनके फलस्वरूप शरीर के भीतर जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनका शमन करता है।

विभिन्न प्रकार के विकार और विष से जो अङ्ग अपने कार्य-सम्पादन में अयोग्य हो जाते हैं, उनको कर्मण्य बनाने में उपवास को सफलता मिलती है।

कुछ लोगों में शरीर की कृशता और दुर्बलता अधिक पायी जाती है। इसका कारण विजातीय द्रव्य होता है और इस प्रकार के लोगों ने अपनी कृशता को दूर करने के लिए जब उपवास का आश्रय लिया है तो उनको पूरी सफलता मिली है।

लोगों का विश्वास है कि भोजन कम मिलने के कारण शरीर में क्षीणता पैदा होती है; पर ऐसा नहीं होता। अल्पाहार से कृशता नहीं उत्पन्न होती, बल्कि उसका कारण यह है कि एक कृश व्यक्ति जो भोजन करता है, उसका ठीक परिपाक नहीं होता और उस दशा में उसके शरीर को पोषक तत्व नहीं प्राप्त होते। यक्ष्मा जैसे कुछ रोगों में क्षय की वृद्धि तेजी के साथ होती है और उनमें जो वजन घट जाता है, उसकी पूर्ति बड़ी मुश्किल से हो पाती है। ऐसे रोगों में दीर्घ उपवास को सफलता मिल सकती है। परन्तु उनमें पहले पहल विजातीय द्रव्य को शरीर से

बाहर निकालने के लिए छोटे और सरल उपवास ही आवश्यक होते हैं।

कैंसर जिसे घुरघुरा भी कहते हैं, बड़ा खराब रोग होता है। उपवास करने से उसकी पीड़ा में कमी हो जाती है, लेकिन और कोई लाभ नहीं होता। यह बात जरूर है कि कैंसर की शुरूआत में ही यदि नियमित रूप से उपवास किया जाय तो वह पूर्णरूप से सेहत भी हो सकता है और यदि आरम्भ में दूसरी औषधियाँ होती रहीं और जब वह बहुत बढ़ गया तो उपवास से कोई विशेष आशा न करनी चाहिए।

जो रोग पैदाइशी होते हैं, उनमें भी उपवास का लाभ नहीं मिला करता। रक्त के अभाव में अर्द्धोपवास अथवा छोटे उपवास का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन उसके लिए कभी लम्बा उपवास नहीं करना चाहिए।

उन्माद रोग के दो कारण होते हैं। यदि वह शरीर के विजातीय द्रव्य के कारण है तो वह उपवास के द्वारा पूर्णरूप से सेहत हो सकता है। लेकिन यदि उस उन्माद का कारण मस्तिष्क की विकृति है तो उसमें उपवास का कोई लाभ न होगा।

चोट या आघात पहुँचने से भी अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं, तो उनमें भी उपवास से कोई सहायता नहीं मिलती।

हिस्टीरिया और इस प्रकार के दूसरे मस्तिष्क-रोगों में उपवास का लाभ उठाया जा सकता है। परन्तु उनके कारणों को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। यदि शारीरिक विजातीय द्रव्य उसके कारण में न मालूम हों तो उपवास की अपेक्षा संयम और नियमित जीवन से लाभ उठाया जा सकता है।

स्कर्वी और रिकेट रोगों में पोषक तत्वों का अभाव होता है। उनमें उपवास से लाभ नहीं होता। इनमें भोजन की

ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे पोषक-तत्व अधिक प्राप्त हो सकें।

उपदंश और गरमी के रोगों में भी उपवास की सलाह नहीं दी जा सकती। अनुभव से मालूम हुआ है कि इन रोगों में उपवास से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। इसलिए इनमें उपवास नहीं करना चाहिए।

मेरुदण्ड का टेढ़ापन भी कुछ इसी प्रकार का अर्थ रखता है। उपवास से उसमें किसी प्रकार का लाभ नहीं मालूम होता। यद्यपि ऐसा जानने को मिला है कि उपवास के प्रयोग से उसमें बहुत कुछ सफलता मिली है, फिर भी उपवास का परामर्श नहीं दिया जा सकता।

गर्भवती स्त्री को उसी दशा में और वह भी छोटा तथा सरल उपवास कराना चाहिए, जब उसके शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्रित हो, अन्यथा उपवास से हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है।

इस प्रकार थोड़े-से रोगों को छोड़कर बाकी सभी रोगों में उपवास जादू की भाँति लाभ पहुँचाता है। अगर रोग पैदा होते ही औषधियों के सेवन से शरीर को विषाक्त नहीं बना डाला गया तो उपवास के द्वारा तुरन्त लाभ उठाया जा सकता है। मसूरिका, लाल बुखार, हाँफा-डाफा, कुकुर खाँसी, श्वास रोग, पक्षाघात जैसे रोगों का कारण शरीर में एकत्रित विजातीय द्रव्य होता है। इसीलिए यदि छोटे उपवास करा के उस विष को शरीर से निकाल दिया जाय तो इन रोगों में बहुत लाभ होता है। इस प्रकार के उपवास के साथ यदि आँतों की सफाई, विजातीय द्रव्य निकालने का कार्य, ठंढे पानी का स्नान, ताजे जल का पीना और ताजी वायु का सेवन बराबर होता रहे तो संक्रामक रोगों में तुरन्त लाभ आरम्भ होता है। मस्तक पीड़ा, दस्त, कै,

शरीर के अंगों का ऐंठना इत्यादि छोटे-बच्चों के रोगों में नियमानुसार छोटे उपवास बहुत लाभदायक होते हैं।

बहुधा लोग कहने लगते हैं कि दुबले-पतले आदमियों को उपवास नहीं करना चाहिए। जिनके शरीर पर चरबी अधिक होती है, उपवास से उन्हीं को लाभ होता है। यह धारणा लोगों की बिलकुल गलत है। कितने ही रोगियों ने अपने शरीर की कृशता में उपवास करके लाभ उठाया है। यहाँ तक कि १०५ पौण्ड वजन के एक आदमी ने अपनी पक्षाघात की बीमारी में ४१ दिन का उपवास किया था और वह पूर्ण रूप में सेहत हुआ था। इस प्रकार की और भी घटनायें हैं। ९८ पौण्ड के वजन वाले एक व्यक्ति ने १८ दिनों का उपवास किया था और उसने स्वास्थ्य प्राप्त किया था।

लेकिन इस प्रकार के उदाहरणों के आधार पर कृश व्यक्तियों को उपवास करने की सलाह नहीं दी जा सकती। इस प्रकार के व्यक्ति इस विषय के अधिकारियों के परामर्श और संरक्षण में उपवास कर सकते हैं।

जाहिरा तौर पर रोग न मालूम होने पर लोगों की अधिक दुर्बलता का कारण यह होता है कि वे जो भोजन करते हैं, उसकी पाचन क्रिया शरीर के भीतर ठीक से नहीं होती और इस दशा में ऐसे लोगों के शरीर में रक्त नहीं बनता, जिससे उनकी दुर्बलता बढ़ती रहती है। पाचन-क्रिया को उत्तेजित करने के लिए उपवास से अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता।

स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उपवास एक ऐसा उपाय है, जिसमें कभी धोखा नहीं हो सकता। उपसास के दिनों में विरुद्ध लक्षण उत्पन्न होते हैं। शरीर के भीतर छिपे हुए रोग उत्तेजित हो जाते हैं। यदि इनकी परवाह न की जाय तो विजातीय द्रव्य के

निकलने के साथ-साथ, शरीर के भीतर उसके संशोधन का कार्य भी आरम्भ हो जाता है।

उपवास करने पर मृत्यु भी होती है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि मृत्यु उपवास के कारण हुई है। जब रोगी की जीवन-शक्ति का बिलकुल क्षय हो जाता है तो उपवास के लाभ की सम्भावना कम रह जाती है। उस दशा में लम्बे उपवास से मृत्यु भी हो सकती है। परन्तु वह उपवास के लिए किसी प्रकार अपवाद नहीं हो सकती।

इस प्रकार के रोगी दूसरी औषधियों में महीनों नहीं वर्षों रह कर मरते ही रहते हैं। परन्तु उन औषधियों के पक्षपाती औषधियों को मृत्यु का अपराध नहीं लगाते। इसका अर्थ यह है कि जो लोग उपवास को नहीं समझते और उसके विरुद्ध कहना ही चाहते हैं, वे ही उपवास के सम्बन्ध में उस प्रकार का अपराध लगा सकते हैं।

उपवास और अनाहार शरीर की दो विभिन्न अवस्थायें हैं। उपवास विकार और विष को निकालने के लिए किया जाता है और उनके क्षय के बाद नियमित रूप से शरीर के भीतर भोजन की सामग्री पहुँचाई जाती है।

उपवास के विरोधी इस प्रकार की कितनी ही बातें कहते हैं। उनका यह भी कहना है कि उपवास करने से शरीर की रगों और नसों में अम्लता पैदा हो जाती है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। बल्कि शरीर में जो अम्ल होता है, उपवास उसे निकाल कर शरीर के दूसरे तत्वों के साथ आवश्यकतानुसार उसका परिमाण कर देता है। जो लोग उपवास और अनाहार को एक समझते हैं, वही ऐसा कह सकते हैं, क्योंकि भूख में आहार न मिलने की अवस्था में अम्ल का पैदा हो जाना स्वाभाविक होता है।

उपवास और अनाहार दो चीजें हैं। दोनों एक दूसरे से प्रतिकूल हैं। शरीर के अंगों और ग्रन्थियों का विनाश उसी दशा में आरम्भ होता है, जब सच्ची भूख में भोजन नहीं मिलता। शरीर के भीतरी अंगों से जब विजातीय द्रव्य का भार निकल जाता है तो उन अंगों में स्फूर्ति और उत्तेजना पैदा होती है और वे अधिक कार्य करने लगते हैं।

शरीर के भीतर एकत्रित विजातीय द्रव्य को निकालने में कभी-कभी कई सप्ताह लग जाते हैं। उन दिनों में उपवास बराबर शरीर के विष को निकालने का कार्य करता रहता है। उस समय तक सच्ची भूख पैदा नहीं होती।

विजातीय द्रव्य के निकल जाने और सच्ची भूख के जाग्रत होने के लक्षण उत्पन्न होते ही उपवास तोड़ दिया जाता है और सावधानी के साथ भोजन देने का कार्य आरम्भ हो जाता है।

कैंसर की भाँति अर्बुद अर्थात् ट्यूमर पर भी उपवास का प्रभाव पड़ता है। क्योंकि विजातीय द्रव्य के रक्त में मिल जाने के कारण इस प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। उपवास उसे निकाल कर रक्त को शुद्ध करता है।

उपवास की उपयोगिता में कई बातें शामिल हैं। उपयुक्त भोजन, भोजन का सन्तुलन, शरीर की सफाई, पीने के लिए स्वच्छ जल, स्वस्थ वायु का सेवन, नियमित जीवन, संयम का पालन और व्यायाम इत्यादि सभी बातें मिलकर उपवास में शरीर को नीरोग बनाने के लिए सहायता करती हैं। इस सबके साथ उपवास विषाक्त पदार्थों को शरीर से निकालकर विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करता है और स्वास्थ्य उत्पन्न करता है। छोटे उपवास नियमित रूप से किये जाने पर अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होते हैं।

शरीर में किसी प्रकार के विकार अथवा रोग के न होने पर उपवास की आवश्यकता नहीं होती।

ऊपर जो बातें लिखी गयी हैं, उनको स्पष्ट करने के लिए मैंने बहुत कुछ बरनर मैकफैडन के विचारों का आश्रय लिया है। उनमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता।

कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर उपवास का लाभ करीब-करीब सभी रोगों में उठाया जा सकता है। टूटे हुए अंग, मोच, हड्डी का हट जाना, चोट और बच्चों का सूखा रोग में उपवास नहीं करना चाहिए।

क्षय, तपेदिक, हिस्टीरिया, मूर्छा रोग, श्वास का रोग, सभी प्रकार की खाँसी, सभी प्रकार के ज्वर, नाक के रोग, गले के रोग, सभी प्रकार के पेट के रोग, चर्म रोग, दाद, खाज, फोड़ा-फुन्सी, प्रदर रोग, प्रमेह, वीर्य के रोग, चेचक इत्यादि रोगों में उपवास का तुरन्त लाभ होता है।

इस विषय में गांधी जी ने भी अपना अनुभव बताया है और लिखा है कि कब्ज में, रक्त की कमी में, किसी भी प्रकार के बुखार आने पर, बदहजमी रहने में, सिर के दर्द में, बाई के दर्द में, शरीर के जोड़ों के दर्दों में, शरीर में भारीपन होने पर, उदासी और चिन्ता में और अधिक खुश्की में भी उपवास का लाभ उठाया जा सकता है।

उपवास से होने वाले लाभों को एक साथ बता सकना कठिन है। शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगों की जिस प्रकार कोई संख्या नहीं हो सकती, उसी प्रकार उपवास के लाभों की कोई गिनती नहीं हो सकती।

उपवास के द्वारा मधुमेह जैसे रोग पूर्ण रूप से सेहत किये जाते हैं। उपवास से पाचन क्रिया को शक्ति मिलती है और शरीर को अपनी मरम्मत करने का अवसर प्राप्त होता है। विष

के निकल जाने पर जब शरीर की शुद्धि हो जाती है तो पाचन-क्रिया ठीक रूप से कार्य करती है। पुराने रोगों का अन्त हो जाता है और नये रोग उत्पन्न नहीं होते।

पुराने रोगों को जड़ से निकालने के लिए एक बार का उपवास काफी नहीं होता और न यही जरूरी है कि उस प्रकार के रोगों को पूर्ण रूप से सेहत करने के लिए एक ही बार लम्बा उपवास किया जाय।

पुराने रोगों को जड़ से मिटाने के लिए थोड़े-थोड़े दिनों का मौका देकर कई उपवास करना अधिक अच्छा होता है। इसलिए ऐसे अवसरों पर लम्बे उपवास की अपेक्षा छोटे और सरल उपवासों की ही सलाह दी जा सकती है।

जो रोगी बहुत दिनों तक दूसरी औषधियाँ करते रहते हैं, उनके शरीर का विजातीय द्रव्य एक या दो बार के उपवास से नष्ट नहीं होता। उनको अनेक बार उपवास करना चाहिए और उनके लिए तीन दिनों के अथवा पाँच दिनों के उपवास आरम्भ में अधिक अच्छे रहेंगे।

---

[१८]

उपवास के दिनों के अनुभव

मुझे बहुत बड़ा अनुभव इस बात का है कि उपवास के सम्बन्ध में लोगों में भय का एक झूठा भ्रम बहुत अधिक है। बताने और समझाने के बाद लोग यह तो स्वीकार कर लेते हैं कि उपवास से लाभ बहुत है, परन्तु उसके लिए उनके तैयार

न होने के कई कारण हो जाते हैं। पहला कारण तो यह होता है कि उपवास करने में कुछ दिन लगते हैं और लोगों का यह विश्वास है कि आज के जीवन में इतना समय किसके पास है कि वह सात दिनों तक या उससे भी अधिक अपना सब काम-काज छोड़कर उपवास करने बैठे।

इस प्रकार के लोगों को अपने रोगों में डाक्टरों और वैद्यों की महीनों औषधियाँ लेना आसान मालूम होता है। वे कभी सेहत नहीं हो पाते। उनके घर के लोग एक न एक बीमारी में रोगी बने रहते हैं और नित्य औषधियाँ लाने का क्रम जारी रहता है।

यह परिस्थिति समाज में लगभग अधिकांश परिवारों की रहती है। परन्तु इसमें उनको अधिक कष्ट नहीं मालूम होता। क्योंकि रोजाना के और कार्यों की भाँति एक घंटा अथवा डेढ़ घण्टा वे लोग नित्य औषधि लाने के लिए दे देते हैं और बाद में शेष काम करते रहते हैं।

उनकी समझ में सबसे पहला भ्रम और भय यह रहता है कि उपवास आरम्भ करते ही फिर हम कोई काम न कर सकेंगे। इस दशा में घर के काम कौन करेगा, नौकरी या दूकान पर जाने का काम कैसे होगा? उपवास के सम्बन्ध में लोगों का यह पहला भ्रम है।

दूसरा भ्रम यह रहता है कि कई-कई दिनों तक बिना खाये कैसे रहा जायगा? उनका अपना अनुभव यह रहता है कि एक दिन भी खाने-पीने में देर होने से प्राण आकुल-व्याकुल होने लगते हैं। फिर पाँच-पाँच दिन, सात-सात दिन अथवा इससे भी अधिक दिनों तक बिना खाये कैसे रहा जायगा। यह उनके सामने दूसरा भय रहता है।

एक तीसरा भय और रहता है। लोगों का सहज ही विश्वास

है कि भोजन न करने से कमजोरी बढ़ती है। वे यह भी जानते हैं कि कमजोरी बढ़ना अच्छा नहीं होता।

इस प्रकार के तीन भ्रम और भय जन साधारण में ऐसे भरे हुए हैं कि जिनके कारण उनको उपवास के लाभों से वंचित होना पड़ता है। मैं जानती हूँ कि रोगों को दूर करने के लिए सबसे पहले उपवास का आश्रय लेना पड़ता है। इसलिए जब-जब मैंने अपने रोगियों को समझाया है तो उस समय उन्होंने मान लिया है। परन्तु बाद में वे उपवास इसीलिए नहीं कर सके कि उनको ऊपर लिखी गयी बातों का भय था।

इसी प्रकार की बहुत-सी बातें छोटे बच्चों के रोगों के सम्बन्ध में हैं। मेरा अपना अनुभव यह है कि शत प्रतिशत छोटे बच्चे इसलिए बीमार पड़ते हैं कि उनको मातायें इतना दूध पिलाती हैं, जितना उनके लिए जरूरी नहीं होता। उससे उन बच्चों को कब्ज हो जाता है, पेट में दर्द पैदा होता है, हरे और पीले उनको दस्त आने लगते हैं और बच्चे रात-दिन रोते हैं।

इस प्रकार के कष्टों में जब रोगी बच्चों की माताओं और उनके घर वालों को समझाया जाता है कि बच्चे को दूध पिलाना अथवा ऊपर का दूध देना बन्द कर दो तो हाँ कह देने के बाद भी बच्चे को दूध पिलाना बन्द नहीं किया जाता। उनका विश्वास यह रहता है कि दूध न पिलाने से बच्चा जिन्दा कैसे रहेगा? वे दवायें करेंगे, नीच दर्जे के आदमियों की फूँकों पर विश्वास करेंगे और रुपये-पैसे खर्च करेंगे; परन्तु दूध देना न बन्द करेंगे।

इसका नतीजा भयानक होता है। ९९ प्रतिशत मरने वाले बच्चों का कारण केवल यही होता है कि उन्हें आवश्यकता न होने पर दूध पिलाया गया।

अगर बच्चों के बीमार पड़ने पर, बुखार आने पर अथवा दस्त या पेट में दर्द होने पर एक रोज, दो रोज के लिए दूध पिलाना रोक दिया जाय तो उनका कब्ज तुरन्त दूर हो जाय। उस समय उनको दूध बन्द करने के साथ-साथ उनका पेट भी साफ किया जा सकता है। इससे बच्चों का कोई भी शारीरिक रोग तुरन्त सेहत होता है।

परन्तु यह सब इसलिए नहीं होता कि बच्चों के माता-पिता को इन बातों का विश्वास नहीं होता। और विश्वास न होने का कारण उनका अज्ञान है।

यहाँ पर इस बात को लेकर विस्तार देने की जरूरत नहीं है। मैं बताना यह चाहती हूँ कि उपवास के सम्बन्ध में इस प्रकार के जो भय हैं, वे बिलकुल झूठे हैं। न तो उपवास से किसी प्रकार का कष्ट होता है, न कोई काम बन्द होता है और न किसी प्रकार की कमजोरी पैदा होती है।

जिसे लोग कमजोरी बढ़ना समझते हैं, उनका वह समझना उसी प्रकार भ्रमपूर्ण है, जिस प्रकार किसी व्यवसाय में लगायी गयी पूँजी के सम्बन्ध में यह कहना कि यह हानि हुई। समझना यह चाहिए कि यदि व्यवसाय में पूँजी न लगायी जायगी तो उसका लाभ कैसे मिलेगा? इसी प्रकार उपवास से जो कमजोरी लोगों को मालूम होती है, वह वास्तव में शरीर के विजातीय द्रव्य के क्षय का परिणाम है, जिसके नष्ट होने के बाद और उपवास तोड़े जाने पर मनुष्य को सुन्दर स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

जिन लोगों को उपवास करने का मौका मिला है, वे भली-भाँति जानते हैं कि उपवास के दिनों में न तो कोई कष्ट मिलता है, न भूख लगती है और न कमजोरी पैदा होती है। कोई काम भी बन्द नहीं होता।

जो लोग नौकरी करते हैं, वे बराबर नौकरी पर जाते हैं, जो व्यवसाय करते हैं, वे बराबर अपनी दूकानों पर जाते हैं। लिखने-पढ़ने वाले लोग लिखने-पढ़ने का काम करते हैं और श्रमिक लोग परिश्रम के अपने सब काम करते हैं। उपवासी का न तो व्यायाम बन्द होता है और न चलने-फिरने का कोई कार्य। उसकी इन हालतों में उसको किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं होता। बल्कि जिनको उपवास करने का अवसर मिला है, इस बात का प्रमाण वही दे सकते हैं कि उपवास के दिनों में मन कितना प्रसन्न रहता है, किस प्रकार खुलकर नींद आती है और शारीरिक तथा मानसिक कार्य कितनी सुन्दरता के साथ सम्पादन किये जाते हैं।

यों तो सभी प्राकृतिक चिकित्सकों को इसके विषय में अपना अनुभव रहता है, क्योंकि वे स्वयं आवश्यकता पड़ने पर उपवास करते हैं और अपने रोगियों को कराते हैं। इस प्रकार का जो चिकित्सक जितना ही पुराना होता है, उसके अनुभव उतने ही अधिक होते हैं।

इस दशा में इस विषय की पुष्टि में साधारण दर्जे के उदाहरण मैं यहाँ पर नहीं देना चाहती। और दो उदाहरण ऐसे लोगों को लेकर जो ऐतिहासिक ख्याति रखते हैं, मैं उन बातों का उल्लेख करना चाहती हूँ, सिनसे यह साफ जाहिर हो जायगा कि उपवास के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भय, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, निराधार है।

अमेरिका के एक विद्वान् लेखक अप्टन सिंक्लेयर के अनुभव उपवास के सम्बन्ध में बहुत महत्व रखते हैं। वह अँगरेजी भाषा का एक प्रसिद्ध लेखक है। बहुत दिनों तक अथक परिश्रम के कारण उसका स्वास्थ्य खराब हुआ। चाय, काफी, शराब और

सिगरेट पीने का वह अभ्यासी था। उसके इस अभ्यास ने उसके स्वास्थ्य को तेजी के नष्ट किया।

सिंक्लेयर की तबीयत धीरे-धीरे खराब रहने लगी। मस्तक पीड़ा ने उसके साथ मित्रता की। कोष्ठबद्धता की उसे शिकायत हुई। उसे थोड़ा बहुत बराबर कब्ज रहने लगा। इसका नतीजा यह हुआ कि सर्दी, जुकाम और इस तरह की दूसरी बीमारियाँ उसके जीवन में बराबर बनी रहने लगी। उसको प्रायः गले की शिकायत रहने लगी।

उसकी इस अवस्था में लगातार वृद्धि हुई। सिर का दर्द धीरे-धीरे बढ़ता गया। गले की गिलटियों की सूजन से उसे कभी-कभी बहुत कष्ट बढ़ जाता। नतीजा यह होता कि उसके सभी काम बन्द हो जाते और एक रोगी की हालत में वह चारपाई पर पड़ा रहता।

उस लेखक की यह दशा धीरे-धीरे और भी खराब हुई। अब उसकी चिंता बढ़ने लगी। चिकित्सकों की शरण में उसे जाना पड़ा। जिसने जो रास्ता बताया, उसी का उसने अनुसरण किया; परन्तु किसी से उसे स्थायी लाभ न हुआ।

अब उसे डाक्टरों की शरण लेने के सिवा और कुछ न सूझ पड़ा। वह रोज ही दवायें खाने लगा। उनसे उसे कभी कुछ आराम मिल जाता और कभी वह फिर अपनी पुरानी दशा में पहुँच जाता।

अपने इस प्रकार के दिनों में उस विद्वान् लेखक की भेंट एक ऐसी स्त्री से हुई जो पन्द्रह-सोलह वर्षों तक अनेक रोगों में बीमार रह चुकी थी। जुकाम और सरदी की शिकायत उसे सदा बनी रहती थी। कब्ज भी रहता था और गठिया के रोग ने उसकी जिन्दगी को ही खराब कर डाला था।

उस स्त्री ने सिंक्लेयर को अपनी सब बातें बतायीं। उस

स्त्री ने अंत में उपवास के द्वारा अपने सब रोगों को सेहत किया था और स्वास्थ्य प्राप्त करने के बाद फिर वह पूर्ण सुन्दरी बन गयी थी।

उस स्त्री की बातों ने सिंक्लेयर को बहुत प्रभावित किया। उसने भी उपवास करने का निश्चय किया। पहला ही उपवास उसने बारह दिनों का किया। अपने उपवास के संबन्ध में उसने लिखा है—

"मुझे बारह दिनों के उपवास में कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। मैंने खाना छोड़ दिया था। खूब पानी पीता था और प्रसन्न रहता था।"

"मुझे दो दिनों तक भूख लगती रही। लेकिन तीसरे दिन से वह बन्द हो गयी। उसके बाद किसी दिन मुझे भूख का कष्ट नहीं हुआ। उपवास के जितने ही दिन बढ़ते जाते थे, भोजन की चीजों से मुझे उतनी ही अरुचि होती जाती थी। मुझे किसी प्रकार की कमजोरी नहीं मालूम हुई। दोपहर को कुछ अशान्ति और निर्बलता मालूम होती थी। परन्तु जब मैं स्नान कर लेता था, तब वह चली जाती थी।"

अपने इस उपवास से सिंक्लेयर को कदाचित अधिक लाभ नहीं हुआ। इसलिए उसको फिर उपवास करना पड़ा और उसके संबन्ध में उसने लिखा है—

"बारह दिनों का मैंने जो उपवास किया था, स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए वह पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ। क्योंकि बारह दिनों के बाद जब मैंने अपना वह उपवास संतरे के रस से तोड़ा था, उस समय मेरी क्षुधा जागृत नहीं हुई थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैंने समय से पूर्व अपने उपवास को तोड़ दिया है। क्योंकि भूख के जाग्रत न होने से मालूम होता है कि मेरा शरीर अभी तक निर्विकार नहीं हो सका।

इस दशा में मुझे फिर उपवास करना पड़ा। दूसरे उपवास को आरम्भ करने के समय मैंने लम्बे उपवास का विचार नहीं किया था। परन्तु दो दिनों के बाद तीसरे ही दिनों मेरी भूख फिर बन्द हो गयी।

मैंने उपवास को चलने दिया। मैं प्रसन्न था। न कोई कष्ट था और न कोई पीड़ा थी। किसी प्रकार का खाना न खाने पर भी मुझे जरा भी कमजोरी का आभास नहीं होता था। इस दशा में मेरा उपवास चलता रहा।

मैं नित्य ठण्ढे जल में नहाता था और सम्पूर्ण शरीर को खूब रगड़-रगड़कर धोता था। नियमित रूप से नित्य चार मील टहलने जाता था और कुछ व्यायाम भी करता था। इस प्रकार की दिनचर्या में मैं बहुत प्रसन्न रहता था और किसी प्रकार के कष्ट का मुझे अनुभव न होता था।

अपने इन दिनों में मुझे कभी-कभी ठण्ढ मालूम होती थी। लेकिन वह कष्ट दायक न थी। आठ दिनों के उपवास में मेरा वजन नौ पौण्ड घट गया। परन्तु उसके बाद संतरा और अञ्जीर के खाने से एक सप्ताह के भीतर ही मेरा घटा हुआ वजन पूरा हो गया।"

इस प्रकार दो उपवासों से सिंक्लेयर को पूरी सफलता मिली। उसके सारे रोग नष्ट हो गये, उपवास और उसके नियमों पर उसकी अटूट श्रद्धा पैदा हुई। उपवास के बाद भी बहुत दिनों तक वह केवल फल और सूखे मेवे खाता रहा। स्वास्थ्य प्राप्त करने में उसे जो सफलता मिली, उसने उसको उपवास का भक्त बना दिया। इसीलिए उसने अपना विश्वास प्रकट करते हुए लिखा है—

"अपने अनुभव के अनुसार उपवास को मैं स्वास्थ्य एवम् यौवन प्राप्त करने के लिए एक साधन समझता हूँ। रोगों को दूर

करने में जब सब चिकित्सायें असफल हो जाती हैं तो उपवास को पूरी सफलता मिलतीहै। मेरा यह विश्वास है कि उपवास संसार की समस्त बहुमूल्य वस्तुओं में कीमती है। उपवास का आश्रय लेने के कारण मुझे कभी कोई भीषण रोग नहीं हो सकता।"

उपवास के सम्बन्ध में गाँधी जी ने भी अपने अनुभव लिखे हैं। वे उपवास करने वालों के लिए बड़े काम के हैं, इसीलिए नीचे की पंक्तियों में मैं उनका उल्लेख करना चाहती हूँ—

" × × मेरा यह विश्वास है कि नियमित रूप से उपवास करने पर शरीर को अद्भुत लाभ होता है, क्योंकि उपवास से शरीर की बहुत-सी गन्दगी निकल जाती है।

× × उपवास के दिनों में मैं नमक और सोडा डालकर पानी पीता था। उपवास के दिनों में पानी से मुझे अरुचि हो गयी थी। नमक और सोडा डालने से उस अरुचि में परिवर्तन हो गया था। बहुत-सा पानी पीने से पेट साफ़ रहता है और मुँह सूखता नहीं है।

मेरे पीने के पानी में पाव-भर पानी में ढाई रत्ती नमक और इतना ही सोडा डाला जाता था। छः से आठ बार तक मैं लगभग डेढ़ सेर पानी पी जाता धा। मैं रोज एनिमा लेता था, जिसमें डेढ़ पाव पानी १६ रत्ती नमक और उतना ही सोडा होता था। पानी हमेशा गुनगुना होता था। गीले कपड़े से मेरा बदन पोंछ दिया जाता था।

रात को मुझे खूब नींद आती थी और कुछ देर मैं दिन में भी सो लेता था। अपने उपवासों में मैंने साढ़े तीन दिन तक सबेरे के चार बजे से लेकर शाम के आठ बजे तक काम किया

किया था। मैं खूब बहस किया करता था। उपवास से मेरे पत्र-व्यवहार और सम्पादन कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ी।

चौथे दिन तीसरे पहर मैंने इसलिए काम बन्द कर दिया था कि उसी दिन मेरे सिर में दर्द पैदा हो गया था। लेकिन पाँचवें दिन मेरा वह दर्द दूर, हो गया। मुझे अपने शरीर में पूरी शक्ति का अनुभव हुआ। छठे दिन मुझे पहले से अधिक ताजगी मालूम होने लगी थी और सातवें दिन तो मैं ऐसा ताजा और शक्तिशाली मालूम होने लगा था कि मुझे स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य मालूम होता था।"

इस प्रकार के उदाहरणों को पढ़ लेने के बाद किसी उपवासी को सन्देह करने का कोई कारण नहीं रह जाता। उपवास के दिनों में किसी का कोई कार्य बन्द नहीं होता और न उसमें किसी प्रकार की कमजोरी ही पैदा होती है।

---

(१९)

उपवास के बाद का भोजन

स्वास्थ्य के साथ एक अच्छी जिन्दगी बिताने के लिए मनुष्य को केवल भोजन का ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिए। जिसे इसका ज्ञान नहीं है, वह नीरोग नहीं रह सकता और जिसे अपने भोजन का ठीक ज्ञान है, वह कभी बीमार नहीं पड़ सकता। अगर हम सब लोग केवल इस एक बात पर विश्वास कर लें तो हमारा सबसे अधिक कल्याण हो सकता है।

भोजन के सम्बन्ध में कई स्थानों पर इस पुस्तक में लिखा

गया है और उसकी कुछ बातें, जो बहुत आवश्यक हैं, मैं यहाँ पर भी बताना चाहती हूँ।

हम सबको अपने मकानों के बैठके में, बैठने-उठने के कमरे में और अपने रहने के स्वच्छ और सुन्दर स्थान में यह लिखकर लगाना चाहिए कि भोजन हमारा जीवन है, भोजन की भूलें हमारी बीमारियाँ हैं और भोजन का ज्ञान हमारे स्वस्थ रहने का उपाय है।

हमारी जिन्दगी की ये तीनों बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं तीन को हमें समझना है, इन्हीं तीन को हमें जानना है और इन्हीं तीनों बातों के मार्ग पर हमें चलना है। स्वस्थ और नीरोग रहने का यही एक मार्ग है।

हम सभी को सावधानी के साथ यह जान लेना चाहिए कि हम खाना जानते हैं, परन्तु क्या खाना चाहिए और किस प्रकार खाना चाहिए, यह नहीं जानते।

अगर हम सबको अपने भोजन का ज्ञान होता तो हमको अलग से उपवास के सम्बन्ध में सीखने और जानने की जरूरत न पड़ती और न हमको किसी डाक्टर-वैद्य की दवाओं की ही आवश्यकता होती।

भोजन का ज्ञान न होने के कारण और प्रकृति के नियमों को भंग करके भोजन के सम्बन्ध में गलत रास्ते पर चलने के कारण हमारी सबकी जिन्दगी विभिन्न प्रकार के रोगों के भार से दबी हुई है।

हम सभी इस बात को भली-भाँति सुन लें और अगर उस पर विश्वास न कर सकें तो उसको समझने की चेष्टा करें। जिन लोगों ने हमारे भोजन के सम्बन्ध में सही बातों की घोषणायें की हैं, वे भी हमारी सबकी तरह किसी समय इन बातों को नहीं जानते थे।

उन लोगों के जीवन की विपदाओं ने, उनके भीषण रोगों ने जीवन के जिस सत्य को उन्हें जानने का अवसर दिया, उन्होंने उस सत्य का लाभ उठाया और दूसरों के सामने उन्होंने उस सत्य को इसलिए रखा कि दूसरे लोग भी उसका लाभ उठा सकें।

प्रकृति के नियमों को भूलकर मनुष्य ने भोजन के सम्बन्ध में जिस प्रकार की उद्दण्डता से काम लिया है, वह हम सबके हक में अच्छी नहीं साबित हो सकी। समाज में जितनी ही शिक्षा और सभ्यता बढ़ी, हमारे भोजन का रास्ता उतना ही गलत तैयार हुआ।

जो वास्तव में हमारा भोजन था और जिन पदार्थों को खाने से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती थी, उनकी तरफ से आँखें मूँदी गयीं और जायके की खोज में उन चीजों की भरमार हो गयी जो वास्तव में हमारे खाने की न थीं। हमें इस सत्य का पाठ नित्य पढ़ने की जरूरत है कि अगर रोटी, दाल, भात, पूरी, मिठाई, हलुवा, बिस्कुट, मांस, मछली, अण्डे, दूध, घी और मक्खन ही हमारे भोजन में रह जायगा तो हमारी आँतें सुस्त पड़ जायँगी, कार्य करने की शक्ति लगातार उनकी क्षीण होती जायगी और इसके फलस्वरूप कब्ज रहने लगेगा। गलत भोजन हमारी निर्बलता का कारण हुआ है और उस निर्बलता को मिटाने के लिए लोग पौष्टिक भोजन की खोज में रहा करते हैं, उसने लगातार उनको रोगी बनाकर उनके जीवन को सड़ा डाला है। जिन सम्पत्तिशालियों ने पौष्टिक भोजन की खोज में लगातार हलुवा, पूरी और मिठाई खायी है और गद्दों पर लेटे रहने को अपने जीवन का सुख समझा है, उनके सम्पूर्ण जीवन भीषण गन्दगी से भर गये हैं। यह जीवन का एक भयानक दुर्भाग्य है।

इस विषय में यहाँ पर विस्तार देने की जरूरत नहीं है। इसलिए मुझे फिर मूल विषय पर आ जाना चाहिए। मुझे यहाँ पर बताना है कि उपवास के बाद का भोजन क्या होना चाहिए ? क्योंकि इसमें लोग भयानक भूलें करते हैं।

मातायें अपने बच्चों को स्वस्थ बनाने के लिए पौष्टिक भोजन देती हैं। जिसे भगवान ने पैसे दिये हैं, वह पौष्टिक भोजन की खोज में रहा करता है। यह पौष्टिक भोजन क्या है, इसे मैं साफ-साफ यहाँ पर बताना चाहती हूँ। इसलिए कि इस पौष्टिक भोजन के प्रलोभन ने न जाने कितने लोगों की बिना मौत जाने ली हैं।

बड़ी पीड़ा के साथ मैं यहाँ पर एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक समझती हूँ। लगभग पैंतीस वर्ष की आयु का एक मनुष्य प्लुरिसी की बीमारी में बीमार हुआ। यह बीमारी पसली के दर्द की होती है। पहले कुछ दिनों तक वह मनुष्य उसे कुछ समझ न सका। अँगरेजी की किताबों की उसकी एक बड़ी दूकान थी। व्यावसायिक होने के कारण उसके पास इतना समय न था कि अपने छोटे-मोटे रोग की तरफ ध्यान देता।

फल यह हुआ कि उसका रोग बढ़ गया। उसे खूब बुखार रहने लगा। पसली की पीड़ा ने उसको अस्त-व्यस्त कर दिया। उस समय उसके घर के लोगों ने एक वैद्य की दवा आरम्भ की। वह दवा दो सप्ताह तक चलती रही। रोगी की हालत बिगड़ती गयी।

इसके बाद वह रोगी एक बड़े सरकारी अस्तपताल में ले जाया गया। वहाँ उसकी दवा आरम्भ हुई। पूरे चार दिन बीत गये। रोग का निदान न हो सका। इसके लिए एक्सरे लिया गया। डाक्टरों ने बढ़ी हुई प्लुरिसी का रोग बताया। एक महीने

तक अस्पताल में रहने के बाद भी रोगी को कोई सेहत न मिली। इस दशा में उसके घर के लोग घबराने लगे।

निराश होकर रोगी फिर अपने घर पहुँच गया और एक प्राइवेट डाक्टर की चिकित्सा आरम्भ हुई। रोग अच्छा न हुआ। उस दशा में कुछ लोगों ने उसे प्राकृतिक चिकित्सा करने की सलाह दी।

इस प्रकार वह रोगी मुझे सौंपा गया। उसकी कमजोरी बहुत बढ़ गयी थी। शरीर सूख गया था। उसके भीतर कफ का एक ढेर था जो भयानक रूप में निकला करता था। कफ और खाँसी के मारे किसी को नमस्ते करने की सामर्थ उसमें न थी।

मैंने डरते-डरते उस रोगी को अपने हाथ में लिया। अभी तक उसका जो भोजन चल रहा था, उसके कारण उसकी मृत्यु बार-बार उसकी ओर देखती थी। मैंने सबसे पहले उसका वह भोजन बन्द किया और आवश्यकतानुसार उसे फलों का दिलाना शुरू किया। निर्बलता के कारण वह उपवास के योग्य न था। मैंने एनिमा के द्वारा उसके पेट की सफाई का सिलसिला शुरू कराया। इससे आठ रोज के बाद उसकी दशा में परिवर्तन हुआ। उसका कफ इतना कम हो गया कि वह धीरे-धीरे बात करने लगा। मुझे भी अब कुछ आशा हुई।

उसकी शक्ति को बढ़ाने के लिए मैंने फलों के रस बढ़ाये और रोजाना उसके पेट की सफाई कराई। इससे उसको लगातार लाभ हुआ। कुछ शक्ति के आ जाने पर मैंने उसे कई एक स्नान देने आरम्भ किये। तीन सप्ताह में उसको अपूर्व लाभ हुआ। अब मैं पूरी आशा के साथ उसका इलाज करती रही।

एक महीने के उपरान्त उस रोगी का बुखार बिलकुल चला गया। पसली का दर्द भी न रहा। वह उठने-बैठने लगा। उसकी शक्ति को देखकर मैंने खाने-पीने में अब वृद्धि की। उसे फल

भी दिये जाने लगे। डेढ़ महीने के बाद उसका शाकाहार आरम्भ हो गया।

दूसरा महीना समाप्त होते-होते मैंने उसकी चिकित्सा बन्द करदी और उसके घर पर उसे फलाहार और शाकाहार पर छोड़ दिया। वह धीरे-धीरे अब अपनी दूकान जाने लगा।

पन्द्रह दिनों के बाद उसे देखने के लिए मैं फिर बुलाई गयी। वह १०२ डिग्री के ज्वर में लेटा था। उसे देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। बड़ी मुश्किल में उसकी स्त्री से पता चला कि रोगी की निर्बलता को दूर करने के लिए एक वैद्य ने दस दिन पहले एक पौष्टिक पाक बनवा दिया था। उसको खाने के सिवा और कोई नयी बात नहीं की गयी।

मैं यह कहकर वहाँ से चली आयी कि अब इस रोगी की चिकित्सा वही वैद्य करेगा। मैंने बाद में सुना भी कि वैद्य की दवा हो रही है। फिर कुछ दिनों तक मुझे कोई समाचार न मिला और अचानक एक दिन सुना कि उस रोगी की मृत्यु हो गयी। यह सुनकर मेरे हृदय में एक पीड़ा हुई और मेरे मुँह से निकल गया कि उस पौष्टिक पाक का यह परिणाम है।

जो लोग उपवास करना चाहते हैं अथवा जिन लोगों ने उपवास पर विश्वास किया है, उनको भोजन के सम्बन्ध में बतायी गयी सभी बातों को समझ लेना चाहिए और कठोरता के साथ उनका पालन करना चाहिए। यदि ऐसा न होगा तो उपवास का कोई लाभ न होगा और जैसा कि लिखा जा चुका है, भोजन की भूल से भयानक संकट भी उपवासी के जीवन में पैदा हो सकता है।

मैं तो उन लोगों को जानती हूँ जो उपवास के ही दिनों में नियमों पर परदा डालकर अपनी बुद्धि से काम लेने लगते हैं

और सोच लेते हैं कि अगर थोड़ा-सा ऐसा कर लिया जायगा तो उसमें क्या अन्तर पड़ता है ?

उपवास का समय उसके नियमों पर बहस करने का समय नहीं होता। मैं तो स्पष्ट कहना चाहती हूँ कि जो लोग नियमों के स्थान पर मनमानी करना चाहते हैं, उनको कभी उपवास में नहीं पड़ना चाहिए।

मनुष्य के भोजन में वास्तविक पदार्थ फल हैं और उनके साथ-साथ अनेक प्रकार के शाक तथा ताजी तरकारियाँ उसके भोजन की अच्छी सामग्री हैं। इसलिए यों तो सदा इनका लाभ उठाना चाहिए और बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, सब के भोजन में फलों, शाकों और ताजी तरकारियों के हिस्से अधिक रहने चाहिए। मनुष्य के स्वास्थ्य और शक्ति के लिए इन चीजों से जो सहायता मिल सकती है, वह किसी पौष्टिक पाक तथा हलुवा, पूरी और मिठाई से कभी नहीं मिल सकती। यह बात तो हमेशा जान लेने की है। परन्तु उपवास का निश्चय जिस घड़ी से किया जाय, उस समय से लेकर एक निश्चित समय तक के लिए उपवास के बाद फलों, शाकों और ताजी तरकारियों को कभी न भूलना चाहिए और न उनके साथ किसी पौष्टिक चीज को, जो ऊपर बतायी गयी चीजों के विरुद्ध पड़ती हो, कभी खाने में शामिल करना चाहिए।

उपवास के बाद कुछ दिनों तक उपवासी को फलाहार और शाकाहार की सलाह इसलिए दी जाती है कि उपवास के दिनों में शरीर की पाचन क्रिया बन्द हो जाती है और भीतर के अनेक अंग-प्रत्यंग एकत्रित विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने का काम करने लगते हैं।

इस प्रकार की अवस्था में लम्बे उपवास के कारण शरीर के भीतर जो अवयव परिपाक करने का काम करते हैं, वे निर्बल

पड़ जाते हैं। उपवास तोड़ने के बाद ऐसे रस और बाद में पाचक रसीले पदार्थ खाने के काम में लाये जाते हैं, जिनसे उन अवयवों को धीरे-धीरे शक्ति मिलती है और फिर वे कुछ दिनों के बाद इस योग्य हो जाते हैं कि वे सभी प्रकार की चीजों को पचा सकें।

इसीलिए उपवास के दिनों को सामने रखकर और उपवासी की शक्ति के अनुसार यह निश्चय कर लेना पड़ता है कि उपवास तोड़ने के बाद कितने दिनों तक अन्न का आहार नहीं दिया जा सकता।

ऐसा करने का एक दूसरा उद्देश्य यह भी होता है कि जब रोगों को दूर करने के लिए उपवास किये जाते हैं तो उपवास के बाद भी कुछ दिनों तक उस प्रकार की चीजें खाने को दी जाती है कि जिनसे विजातीय द्रव्य नहीं बनता और शरीर को शक्ति तथा स्वास्थ्य अधिक प्राप्त होता है।

जो चीजें विजातीय द्रव्य नहीं बनातीं, उनमें सब से अधिक उपयोगी फल माने जाते हैं। अंगूर, नासपाती, सेव, सन्तरा, नारंगी, मीठा नीबू, पपीता, खरबूजा, चकोतरा, अनन्नास और शरीफा आदि फल इसके लिए अधिक लाभकर होते हैं। इसी प्रकार अंजीर, खजूर, किशमिश, मुनक्का, अमरूद, बेल और मकोय से भी विकारों की उत्पत्ति नहीं होती और शरीर को शक्ति मिलती है।

फलों के बाद मनुष्य के भोजन में हरे शाकों और ताजी तरकारियों की उपयोगिता बहुत है। मूली, पालक, पात गोभी, गाजर, खीरा, प्याज, टमाटर और ककड़ी जैसी तरकारियाँ कच्ची भी खायी जा सकती हैं और पका कर भी। यदि इनको बिना पकाये कच्चा ही खाया जाय तो अधिक लाभदायक होती हैं।

जो तरकारियाँ पका कर खायी जाती हैं, उनमें परवल, नेनुआ, तरोई, लौकी, शलजम, करेला, सोआ, मरसा, तथा पालक का स्थान लाभ की दृष्टि से पहला है और भिण्डी, फूलगोभी, टिण्डा, चुकन्दर, हरा कद्दू, कुँदरू आदि तरकारियाँ दूसरी संख्या में आती हैं। मटर, सेम और आलू की तरह की तरकारियों का स्थान तीसरा होता है।

लौकी, टमाटर, तथा गाजर का रस कच्चा भी लिया जा सकता है और वह बहुत उपयोगी होता है। लौकी और गाजर को कद्दू कस पर कस लेने के बाद कपड़े से छान कर रस निकाला जा सकता है। जिन तरकारियों का रस कच्चा नहीं लिया जा सकता, उनका रस पकाकर लेना चाहिए। उसका नियम यह है कि आध सेर तरकारी के साथ दो-तीन छटाँक पानी मिलाकर पतीली में हलकी आँच पर पकाकर रस निकाल लेना चाहिए।

इस तरह से फलों, मेवों, शाकों और तरकारियों को खाने के काम में लाकर उपवासी को लाभ उठाना चाहिए और अपने शरीर के पाचक अवयवों को उत्तेजना देकर कुछ दिनों में इस योग्य बना देना चाहिए कि वे अन्यान्य पदार्थों के पचाने का भी काम कर सकें।

उपवास के बाद और विशेष कर लम्बे उपवास के बाद जितने अधिक दिनों तक फलों, शाकों और तरकारियों का आश्रय लिया जायगा, उपवास का उतना ही अधिक लाभ मिलेगा। फलों, शाकों और तरकारियों से शरीर को जो ताजगी, शक्ति, स्फूर्ति और उत्तेजना प्राप्त होती है, वह किसी पौष्टिक चीज से नहीं मिल सकती। इसलिए उपवास के बाद कभी किसी व्यक्ति को गरिष्ट और काबिज चीजों के चक्कर में इस

लिए न पड़ना चाहिए कि उनके द्वारा शरीर की खोई हुई शक्ति जल्दी नहीं लौट सकेगी।

फलों, शाकों और तरकारियों के सम्बन्ध में यह जान लेना जरूरी है कि वे जितनी ही ताजी होंगी, उतनी ही मुफीद होंगी। इसलिए उनके खरीदने के समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जो फल खरीदे जायें वे गले न हों और जहाँ तक सम्भव हो, वे हाल के तोड़े हुए हों। बासी और कितने ही दिनों के तोड़े हुए अथवा पाल के पके हुए कीमती फलोंकी अपेक्षा साधारण फल जो ताजे और हाल के तोड़े हुए होते हैं, वे अधिक लाभदायक होते हैं।

यही बात शाकों और तरकारियों के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिए। इनके खरीदने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दोनों ही चीजें हरी और ताजी हों। बासी होने के कारण उनका प्रभाव और लाभ बहुत कम हो जाता है। यही कारण है कि इस प्रकार की ताजी चीजों की अपेक्षा बासी और कुम्हलाई हुई चीजें सस्ती मिला करती हैं।

उपवास के बाद ऊपर लिखी गयी बातों का जितना अधिक ध्यान रखा जायगा, उपवास का उतना ही अधिक लाभ होगा।

उपवास के बाद के भोजन में जो चीजें ऊपर बतायी गयी हैं, उनमें दूध भी शामिल है और जहाँ तक सम्भव हो दूध गाय का और ताजा होना चाहिए।

---

(२०)

एनिमा लेने की विधि

'उपवास करने के नियम' नामक परिच्छेद में और इस पुस्तक के दूसरे अनेक स्थलों पर भी एनिमा लेने का जिक्र किया गया है। इसलिए यहाँ पर यह बताने की आवश्यकता है कि एनिमा कैसे लिया जाता है और उसके लिए किन-किन बातों का जानना आवश्यक है ?

एनिमा लेने की विधि को लिखने के पहले यह बताना भी जरूरी मालूम होता है कि इसका उपयोग किसलिए किया जाता है। वास्तव में एनिमा लेने का अभिप्राय शरीर के भीतर की सफाई से है।

जब तक एनिमा के सम्बन्ध में आविष्कार न हुआ था, रेचक औषधियों के द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति होती थी और आज भी, जहाँ एनिमा का प्रयोग नहीं किया जाता अथवा एनिमा का यह महत्व नहीं समझा जाता, उन्हीं रेचक औषधियों के द्वारा आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य के शरीर की भीतरी सफाई की जाती है।

औषधियों के द्वारा इस प्रकार के कार्य को जुलाब देना कहते हैं। पुरानी चिकित्सा के पक्षपाती और साधारण लोग इस नाम से बहुत परिचित हैं। शरीर की भीतरी सफाई के लिए पुरानी चिकित्सा में भी इसको आवश्यक माना गया था और उसका प्रचार अब तक है। लेकिन उस आवश्यकता के लिए चिकित्सा-विज्ञान में आगे भी खोज का कार्य हुआ और शरीर की उस सफाई के लिए जो नयी विधि निकाली गयी, एनिमा का प्रयोग उसका नाम पड़ा।

सफाई के इस नये साधन का ज्ञान जिनको नहीं है, वे अभी तक पुराने तरीकों से काम लेते जा रहे हैं और जिनको नव-आविष्कृत इस साधन का ज्ञान हो गया है, वे पुरानी पद्धति को छोड़कर इस नवीन साधन का लाभ उठा रहे हैं। एक बात और है, पुरानी रीतियों के पक्षपातियों में एक भयानक दुराग्रह देखा जाता है। वे किसी नवीन आविष्कार का विरोध करना कुछ अपनी प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक समझते हैं। लेकिन इसका कुछ परिणाम नहीं निकलता।

यह बात मैंने इसलिए लिखी है कि बिना किसी कारण और आवश्यकता के वैद्यों को एनिमा देने की विधि की मैंने व्यर्थ की आलोचना करते हुए देखा है। इस प्रकार की विवेचना में वे एक अच्छी चीज की त्रुटियाँ निकालने की कोशिश करते हैं।

जुलाब लेने और एनिमा लेने में अन्तर है। यहाँ पर मैं उसकी गम्भीरता में नहीं जाना चाहती और न इसी पर प्रकाश डालना चाहती हूँ कि उसका प्रभाव शरीर की आन्तरिक प्रणाली पर किस प्रकार दूषित पड़ता है। इस विषय को मैं इतना ही लिखकर समाप्त कर देना चाहती हूँ कि विरेचक औषधियों के द्वारा जो पेट की सफाई की जाती है अथवा की जाती थी, उससे जिसको सफाई करनी पड़ती थी, उसे एक बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता था। वे विरेचक औषधियाँ बहुधा हजम हो जाती थीं। उससे शरीर के भीतर भयानक उत्पात खड़े हो जाते थे और मनुष्य को एक नये कष्ट का सामना करना पड़ता था।

एनिमा के प्रयोग में यह बात नहीं है। इसके साथ असफलता का कोई प्रश्न ही नहीं है। दो या तीन मिनटों में एनिमा ले लिया जाता है और शौचालय में पहुँचते ही पन्द्रह

या बीस मिनटों में पेट की पूरी सफाई हो जाती है। इसमें कोई कष्ट नहीं होता।

एनिमा कैसे लेना चाहिए, अब मैं इस मूल प्रश्न पर आती हूँ। जिन लोगों ने पहले कभी एनिमा नहीं लिया, उनको इसके प्रति एक बड़ी उलझन मालूम होती है। इसके द्वारा मनुष्य के अनेक कष्टों को थोड़ी-सी देर में दूर किया जाता है। इतनी अच्छी चीज के प्रति भी घृणा अथवा उलझन का
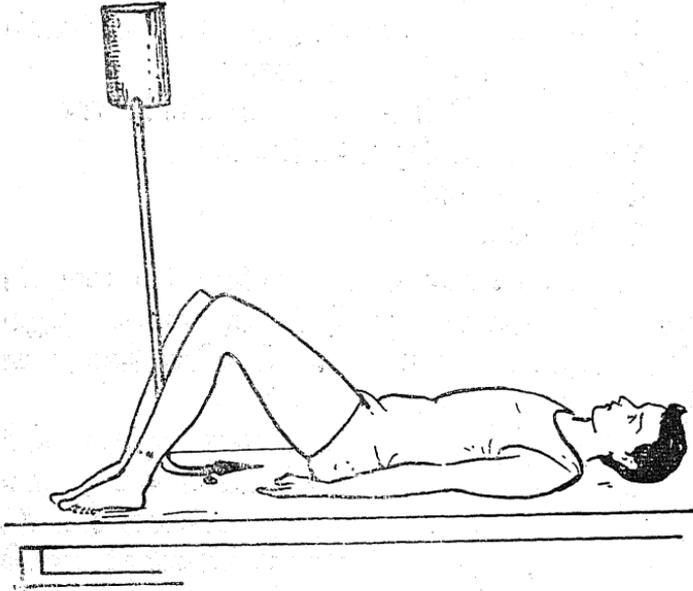
अनुभव करना केवल इस बात का प्रमाण होता है कि इस अच्छी बात का ज्ञान नहीं है। इसलिए जिसे एनिमा दिया जाय, विशेषकर स्त्रियों और लड़कियों को, उन्हें इसकी अच्छाई भली प्रकार समझा देनी चाहिए।

एनिमा लेने का एक पात्र होता है। उसके साथ एक पतला-सा रबर रहता है और उसके एक किनारे पर नोजल अर्थात् टोंटी लगी रहती है।

एनिमा देने के समय उस पात्र में आवश्यकतानुसार पानी भरा जाता है और उस पानी को मनुष्य के पेट में आँतों के भीतर पहुँचाया जाता है। इसी को एनिमा देना कहते हैं।

एनिमा देने के लिए जिस पानी का प्रयोग किया जाता है, उसकी कई विधियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं—

१—गरम पानी के साथ किसी मुलायम साबुन को मिलाकर
२—गरम पानी में ग्लेसरीन मिलाकर
३—गरम पानी में थोड़ा-सा नमक और सोडा मिलाकर
४—गरम पानी में नीबू का रस मिलाकर
५—खाली गरम पानी
६—ताजा पानी

इस प्रकार छः प्रकार के पानी का एनिमा दिया जाता है। गरम पानी का अभिप्राय यह है कि वह साधारण गुनगुना होना चाहिए। अधिक गरम होने से एनिमा लिया न जा सकेगा, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

गरम पानी में मुलायम साबुन की तादाद अधिक न होनी चाहिए। अधिक साबुन से एनिमा लेने वाले को कष्ट हो जाता है और आँतों के लिए भी अधिक साबुन हानिकारक होता है।

एनिमा देने की तैयारी हो चुकने पर लेने वाले को ऊपर के चित्र के अनुसार चारपाई पर पीठ के बल लेट जाना चाहिए और पैरों की तरफ चारपाई के दोनों पाये कुछ ऊँचे कर देने चाहिए। एनिमा जमीन पर भी लिया जा सकता है। लेकिन पैताने को ऊँचा करके चारपाई पर लेना अधिक अच्छा रहता है। एनिमा देने के दो तरीके हैं। एक तो यह कि जिसे लेना

होता है, वह नियमपूर्वक लेट जाता है और दूसरा आदमी उसके निकट खड़ा होकर एनिमा के पात्र को अपने हाथ में लेकर लेटे हुए आदमी से उसे तीन फुट अथवा कुछ अधिक ऊँचा कर देता है।

दूसरा तरीका यह है कि लेने वाला एनिमा पात्र को किसी ऊँचाई पर रख देता है जो उससे तीन फुट या इससे अधिक होती है और स्वयं लेटकर रबर के साथ लगी हुई टोंटी के मुख भाग को मल-द्वार के भीतर केवल इतना पहुँचा दे कि जिससे पानी बाहर न गिरे। इसके बाद टोंटी के मार्ग को खोल देना चाहिए और पानी को अन्दर जाने देना चाहिए।

किसी के द्वारा एनिमा लेने में अथवा स्वयं ले लेने में नीचे लिखी हुई बातों का ख्याल रखना चाहिए—

१—लेटने के समय पैरों को लम्बा रखने की अपेक्षा ऊपर के चित्र के अनुसार उँकड़ू रखना चाहिए।

२—टोंटी का प्रवेश मल के द्वार में करके उसे सावधानी के साथ खोलना चाहिए। यदि वह ठीक-ठीक न खुलेगी और पानी निकलने का रास्ता पूरा खुला न मिलेगा तो पानी बहुत देर में जा पावेगा अथवा न भी जा पावेगा। इसलिए उसे ठीक-ठीक खोलना चाहिए। उसके खोलने में बहुधा गलती हो जाती है। इसलिए अधिक अच्छा तो यह होगा कि पहले से ही उसे खुला रखा जाय। और एनिमा पात्र को पहले ऊँचा न किया जाय। टोंटी को लगाने के पहले थोड़ा-सा पानी निकाल कर देख लिया जाय कि पानी पूरी तौर पर निकलता है या नहीं। इसके बाद टोंटी को लगाया जाय और फिर पात्र को ऊँचा किया जाय।

३—एनिमा लेने के समय आरम्भ से ही लेने वाले को अपने बायें हाथ की उँगलियों से टोंटी को पकड़े रहना चाहिए कि जिससे वह निकल न जाय।

४—उँगलियों से पकड़ने के समय इस बात का ध्यान रहे कि

टोंटी उतनी ही भीतर रहे कि जिससे पानी बाहर न गिरे और यदि उँगलियों का दबाव पड़ने पर टोंटी आवश्यकता से अधिक भीतर होगी तो कभी-कभी पानी पहुँचना बन्द हो जाता है अथवा कम जाने लगता है। उस समय समझ लेना चाहिए कि टोंटी का मुँह भीतर किसी अंग को स्पर्श करता है। इसलिए उँगलियों के दबाव को कम करके उसे कुछ बाहर कर देना चाहिए, लेकिन उतना ही जिससे कि पानी बाहर न गिरे। इसका ध्यान रखना चाहिए।

५—एनिमा लेने की जब तैयारी की जाय तो पानी की तादाद को समझकर उसे पात्र में भरा जाय। पानी की तादाद सबके लिए एक-सी नहीं हो सकती। एक वयस्क के लिए दो सेर पानी साधारण तौर पर ठीक रहता है। ले सकने वाले के लिए इस पानी की मात्रा कुछ अधिक भी हो सकती है। अवस्था के अनुसार इस पानी की मात्रा कम भी होनी चाहिए। लेकिन इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि डेढ़ सेर से वह कम न हो, क्योंकि पानी के कम होने से पूरी तौर पर सफाई नहीं होती।

६—पात्र का पानी समाप्त हो जाने के बाद लेने वाले को दो-तीन मिनट तक उसी प्रकार लेटे रहना चाहिए। यदि कुछ अधिक लेट सके तो अच्छा ही है।

७—एनिमा लेकर सावधानी के साथ शौचालय चला जाय और स्थिर होकर बैठ जाय। पानी निकलना अपने आप आरम्भ हो जायगा। उसे निकालने की कोशिश न करनी चाहिए।

८—एनिमा किसी भी समय लिया जा सकता है।

९—एक बार साबुन के पानी का एनिमा ले चुकने पर दूसरे दिन गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए। अगर एनिमा लगातार देना है, जैसा कि उपवास के दिनों में चलता है, तो दूसरे दिन से गुनगुने पानी का ही चलना चाहिए।

१०—बीच-बीच में ताजे पानी का भी एनिमा देना चाहिए। ताजे अथवा ठण्ढे पानी के एनिमा से आँतों की सुस्ती दूर होती है और उनको स्फूर्ति मिलती है।

११—गरम पानी में नींबू, नमक और सोडा इनमें से किसी को भी मिलाकर दिया जा सकता है और बिना मिलाये भी दिया जा सकता है।

१२—जो लोग साबुन का एनिमा न लेना चाहें, वे गरम पानी में ग्लेसरीन को मिलाकर ले सकते हैं।

१३—पुराने रोगों में और आँतों के भीतर अधिक गन्दगी होने पर एनिमा देने के समय तीन दिनों के बाद पानी की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाकर अधिक कर देनी चाहिए।

मिट्टी की पट्टी—उपवास के दिनों में मिट्टी की पट्टी पेट पर रखने के लिए पिछले पृष्ठों में बताया गया है। उसका नियम यह है कि जो मिट्टी इस काम में आती है, वह कुछ काली अथवा भूरी होती है। इस प्रकार की काली मिट्टी चिकनी होती है और प्रायः तालाब या किसी जलाशय के किनारे पायी जाती है। उस मिट्टी को कूटकर उसके कंकड़ या कूड़े के टुकड़े निकाल देना चाहिए और फिर पीसकर किसी मोटी चलनी से छान लेना चाहिए।

इस छनी हुई मिट्टी को खुले मुँह के किसी बरतन में डालकर उसमें शीतल जल इतना डालना चाहिए कि वह आटे की तरह सन जाय। फिर उसे कम-से-कम बारह घण्टे के लिए छोड़ देना चाहिए। बाद में अगर मिट्टी गाढ़ी होती हुई मालूम हो तो थोड़ा सा पानी इस हिसाब से और छोड़ देना चाहिए कि जिससे मिट्टी पतली न हो जाय।

बारह घण्टे के बाद मिट्टी तैयार हो जायगी। एक बात का और ख्याल रखना चाहिए कि मिट्टी का वह बरतन रात को ओस में रखा जाय और दिन को छाया में।

इस तैयार मिट्टी के रखने का नियम यह है कि एक कपड़े की पट्टी पर मिट्टी की मोटी रोटी बनायी जाय और कपड़े पर रखकर मिट्टी को पेड़ू पर इस प्रकार रखा जाय कि कपड़े का हिस्सा ऊपर रहे और मिट्टी का भाग पेंड़ू पर रहे। नाभि अर्थात् तोंदी से लेकर नीचे की ओर मूत्रेन्द्रिय तक के भाग को पेंड़ू कहते हैं। उस भाग पर तो रोटी बनाकर रखी जाय, उसका वजन सेर-सवा-सेर तक होना चाहिए। इस मिट्टी के कपड़े के ऊपर पट्टी से थोड़ा बड़ा ऊनी कपड़ा रख देना चाहिए। अब रोगी यदि चाहे तो चादर या कम्बल ओढ़कर अथवा बिना ओढ़े लेटा रहे।

एक बार की रखी हुई मिट्टी पन्द्रह-बीस मिनटों के बाद हटा देनी चाहिए और उस स्थान को गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए।

पानी की पट्टी—यह पट्टी बहुधा मस्तक पर पीड़ा के समय अथवा चक्कर आने के समय रखी जाती है। इसका नियम यह है कि पुराने मुलायम कपड़े का एक टुकड़ा लेकर और उसके तीन-चार परत इस प्रकार बनावे कि नाक के ऊपर से लेकर सम्पूर्ण माथे पर आ जावे।

अब इस पट्टी को ठण्ढे पानी में भिगोकर और फिर उसे हलका-सा निचोड़कर उसे माथे पर रखना चाहिए। गरमी में इस पट्टी को पन्द्रह मिनट तक और जाड़े में दस मिनट तक रखना काफी होगा। आवश्यकता होने पर यह पट्टी दिन में कई बार रखी जा सकती है।

हिप-बाथ अर्थात् कटि-स्नान—यह स्नान टब में बैठकर किया जाता है। इसका एक साधारण नियम यह है कि टब में इतना पानी डालना चाहिए कि उसमें बैठने पर पानी पेट की नाभि अर्थात् तोंदी तक आ जाय। अब अपने कपड़े उतारकर उपवासी उस टब में इस प्रकार बैठे कि उसके पैर टब के बाहर रहें और पीठ पीछे की ओर टब में लगी रहे।

यह स्नान किसी बन्द कमरे में लेना चाहिए और टब में बैठ जाने पर किसी मोटी चादर से बदन को गले तक इस प्रकार ढँक ले कि टब चादर के भीतर आ जाय।

यह स्नान गरमी के दिनों में दस से पन्द्रह मिनट तक लेना चाहिए और जाड़े के दिनों में इसका चौथाई समय कम कर देना चाहिए। जाड़े के दिनों में टब में बैठने पर कम्बल ओढ़ना चाहिए और स्नान कर चुकने के बाद भीगे बदन को सूखे कपड़े से पोंछ डालना चाहिए।

फिर सूखे कपड़े पहनकर कुछ देर तक टहलने जाना चाहिए अथवा शक्ति और अभ्यास के अनुसार व्यायाम करना चाहिए। यदि ये दोनों बातें न हो सकें तो कुछ देर के लिए विशेष कर जाड़े के मौसम में गरम कम्बल ओढ़कर शरीर में गरमी ले आने की कोशिश करनी चाहिए।

---

(२१)

उपवास के दिनों के रहस्य

उपवास क्या है, वह किस लिए किया जाता है, उससे लाभ क्या है और उससे उपवासी को क्या मिलता है? इस प्रकार की सभी बातें विस्तार के साथ पिछले पृष्ठों में बतायी जा चुकी हैं और उसके नियमों और उपनियमों पर भी प्रकाश डाला जा चुका है। इस अंतिम परिच्छेद में यह लिखना है कि उपवास के दिनों में भीतर से लेकर बाहर तक—प्रकट और अप्रकट-शरीर में होता क्या है? ये कुछ ऐसे रहस्य हैं, जिन्हें सब कोई नहीं

जानते। नये उपवासियों को इन रहस्यों का कुछ पता नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि उपवास के दिनों के अनेक लक्षण और रहस्य उपवासी के मनोभावों पर तरह-तरह के सन्देह उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार के संदेह उपवासी के सामने न आवें और वे इन लक्षणों के सम्बन्ध में सभी कुछ स्पष्ट रूप से समझें, इसीलिए मैंने उन रहस्यों को खोल कर इन अंतिम पृष्ठों में रखने की चेष्टा की है।

उपवास के दिनों के रहस्यों के उद्घाटन में मेरी अपनी जानकारी है, इस विषय के अधिकारियों की अनुभूतियाँ हैं और उनके साथ-साथ उनकी बहुत-सी बातों में समय-समय की चेतावनी भी है।

रोगों का शमन करने के लिए मानव समाज में जो अब तक उपचार चले आ रहे थे, उपवास उन सब में उपयोगी है, आधुनिक है और शक्तिशाली है।

पिछले पृष्ठों में बार-बार लिखा गया है कि उपवास शरीर में एकत्रित गंदगी और खराबी को साफ करता है। उपवास करने वाले को इसमें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती, अगर वह शरीर की भीतरी दशा को जानता है और उपवास के कार्य पर विश्वास करता है।

उपवास आरम्भ करने पर तीसरे दिन तक कठिनाई का आभास होता है और इस आभास का कारण यह है कि मनुष्य खाने का एक अभ्यासी हो गया है। हमारे जीवन में बहुत से काम आवश्यकता से नहीं, उसके सम्बन्ध में पड़ी हुई आदतों के कारण होते रहते हैं। उन कामों को यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी मनुष्य इस प्रकार के कामों को

स्वयं समझ सकता है। हमारे खाने की आदत भी उनमें से एक आदत है।

इस आदत के कारण खाने की आवश्यकता न होने पर भी भूख की याद आती है। सुस्ती-सी मालूम पड़ती है, काम करने के समय शक्ति का अभाव मालूम होता है, रात को सोने के समय नींद नहीं आती है, उपवासी को स्वयं अपना चेहरा उतरा हुआ मालूम पड़ता है, वह स्वयं अपनी बढ़ती हुई दुर्बलता का अनुभव करता है। उसके इस आभास और अनुभव में उसके मन के भीतर का छिपा हुआ विश्वास काम करता है, जो किसी के समझाने पर भी नहीं मानता। अन्यथा वह जिन बातों का अनुभव करता है, वे बातें उसके शरीर में एक भी नहीं होतीं। इस तरह की सभी बातें आदतों से होती हैं।

उपवासी तीन दिनों तक भूख की याद करता है और भोजन के अभाव का अनुभव करता है, इसमें आदत के साथ-साथ कुछ थोड़ा-सा कारण भी होता है। जो भोजन किया जाता है, उपवास आरम्भ कर देने के बाद भी तीन दिनों तक उसकी पाचन-क्रिया का क्रम चलता रहता है और जब तक पाचन-क्रिया चलती रहती है, उस समय तक थोड़ी अथवा बहुत, सच्ची और झूठी क्षुधा की अनुभूति होती रहती है। उपवास के तीसरे दिन पहुँचते-पहुँचते पाचन-क्रिया अपना कार्य बन्द करने लगती है। उसके रुकते ही भूख की अनुभूति क्षीण होने लगती है और चौथे दिन में पहुँचते ही पाचन-क्रिया स्थगित हो जाती है और उसकी शक्तियाँ शरीर के विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने में लग जाती हैं। फलस्वरूप उस समय तक के लिए भूख नष्ट हो जाती है, जब तक शरीर में विजातीय द्रव्य शेष रहता है।

इस विजातीय द्रव्य के अनेक नाम हैं—विकार, विष, मल, गन्दगी और कितने ही दूसरे नामों से उसका जिक्र किया जाता है। भोजन बन्द करने के बाद और उपवास आरम्भ करने के तीसरे दिन से शरीर के भीतर पाचन-क्रिया का जो एक कारखाना चलता है और जिसमें छोटे-छोटे बहुत-से अवयव अपना-अपना कार्य करने में लगे रहते हैं, वे सब अपने कामों को स्थगित कर देते हैं। और उन सबके द्वारा शरीर के भीतर से संचित विष के निकालने का कार्य तेजी के साथ होने लगता है।

इन दिनों में उपवासी को भूख की याद नहीं आती। वह भोजन की बात कभी सोचता नहीं है। खाने की चीजों को देखने के बाद भी उसके मन में कोई प्रलोभन नहीं पैदा होता। उसके मन में उन चीजों के प्रति अरुचि पैदा हो जाती है। यह अरुचि उस समय बदलती है, जब शरीर भीतर से निर्विष होने पर आ जाता है। शरीर के शुद्ध होते ही जो पाचन-क्रिया विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने का काम कर रही थी, वह फिर अपना कार्य करने के लिए उत्तेजित होती है। उसी समय क्षुधा का आभास होता है और इसी को कहा जाता है कि भूख जाग्रत हुई है।

इस भूख के जाग्रत होते ही समझ लिया जाता है कि शरीर के भीतर का विजातीय द्रव्य नष्ट हो गया। उस समय उपवास तोड़ने की जरूरत पैदा हो जाती है।

उपवास तोड़ने के लक्षण उत्पन्न होने पर यदि उपवास को न तोड़ा जाय तो उससे भयानक हानि होती है। इसीलिए उपवास को तोड़ दिया जाता है।

हमारे शरीर के भीतर जो पाचन प्रणाली काम करती है, वह लगभग छब्बीस फीट लम्बी होती है। वह मुख से आरम्भ

होती है और गुदा के द्वार तक उसका अन्त होता है। इस पाचन प्रणाली में बहुत-से सेल्स और ग्रन्थियाँ काम करती हैं। उन सबका काम मल का बाहर निकालना है।

उपवास के पहले विजातीय द्रव्य के कारण शरीर के भीतर निर्बलता बढ़ती जाती है और वह छिपे हुए रोगों की भाँति नित्य खाना मिलने के कारण अप्रकट रहती है। जिस प्रकार उपवास आरम्भ करते ही अनेक छोटे-मोटे रोग बढ़ते हुए दिखायी देते हैं, ठीक उसी प्रकार जो निर्बलता शरीर के भीतर छिपी हुई थी, उपवास आरम्भ करने के बाद प्रकट रूप में अनुभव होने लगती है। जिसे मनुष्य उपवास की कमजोरी समझता है।

यह खूब समझ लेना चाहिए कि उपवास से उस समय तक कोई निर्बलता नहीं पैदा होती, जब तक शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य का अस्तित्व रहता है। क्योंकि भोजन का जो कार्य शरीर के भीतर होता है, वही कार्य संचित विजातीय द्रव्य का चलने लगता है अर्थात् जो पाचन-क्रिया भोजन के पचाने का कार्य करती थी, वही एकत्रित विजातीय द्रव्य के पचाने का कार्य करने लगती है। इसलिए उन दिनों में न तो भूख लग सकती है और न निर्बलता पैदा हो सकती है। इस विजातीय द्रव्य के समाप्त होते ही यदि भोजन न मिले और पाचन-क्रिया को काम न करना पड़े तो शरीर के भीतर भीषण अग्नि उत्पन्न होती है, जो उसके छोटे-छोटे अवयवों को नष्ट करने लगती है।

उपवास छोटे हों अथवा बड़े, उनसे कमजोरी नहीं पैदा होती। जिन व्यक्तियों ने उनचास दिनों का और साठ दिनों का उपवास किया है, उपवास के दिनों में उनमें भी बदस्तूर शक्ति पायी गयी है। उनको अपने काम कभी बन्द नहीं करने पड़े

और उनके जिन भीषण और जीर्ण रोगों के सेहत होने में डाक्टरों ने दुहाइयाँ दी थीं, वे बड़ी सफलता के साथ सेहत हुए। इस प्रकार की सैकड़ों और हजारों घटनायें इस बात का सुबूत देती हैं कि उपवास के दिनों में कमजोरी के लिए डरने की कोई बात नहीं है।

जो लोग उपवास करना चाहते हैं, उनको साफ-साफ जान लेना चाहिए कि तीन दिनों के उपवास से उसका कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि तीसरे दिन से अथवा उसके बाद विजातीय द्रव्य के निकालने का कार्य शुरू होता है। यदि उपवास के दिनों में कुछ भी खा लिया जाता है तो विजातीय द्रव्य निकालने का कार्य न होकर, पाचन-क्रिया का ही कार्य होता रहता है।

यहाँ पर यह जान लेने की बात है कि पाचन-क्रिया का कार्य करने वाली जो बहुत-सी ग्रन्थियाँ हैं, जब वे पाचन-क्रिया को बन्द कर देती हैं, उसी दशा में वे विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने में लग जाती हैं। उन ग्रन्थियों से चाहे पाचन-क्रिया का काम ले लिया जाय अथवा विजातीय द्रव्य के बाहर निकालने का। दो में से एक ही कार्य एक समय में उनसे लिया जा सकता है।

इस दशा में उपवास आरम्भ करके जो लोग अपने निर्बल विश्वास के कारण भोजन की कोई भी चीज थोड़ी-बहुत यह समझकर लेते रहते हैं कि इससे तो कोई हानि होती नहीं, उनको उपवास का कोई लाभ नहीं हो सकता। चाहे वे तीन दिनों का उपवास करें और चाहे पन्द्रह दिनों का। इसलिए जो उपवास का लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें कठोरता के साथ उपवास के नियम का पालन करना चाहिए और उपवास आरम्भ करके पहली घड़ी से लेकर अन्तिम घड़ी तक पानी के सिवा कुछ न लेना चाहिए। हाँ, आवश्यकतानुसार कभी-कभी उस पानी में

नीबू का रस, अथवा किसी खट्टे-मीठे फल का रस मिला सकते हैं। पिछले पृष्ठों में शहद और उसके अभाव में थोड़ा-सा गुड़ मिला लेने की बात लिखी गयी है। उसे मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहती हूँ। जो उपवासी निर्बल होते हैं, उनके पानी में थोड़ा-सा शहद मिला देने से उनके निर्बल हृदय को शक्ति मिलती है। शहद के अभाव में बहुत थोड़ी मात्रा में मिलाया हुआ गुड़ कुछ इसी प्रकार का काम करता है। पानी में इन दोनों चीजों के मिला देने से आँतों में सूखे हुए मल को निकालने में भी सहायता मिलती है। परन्तु खाँसी और श्वास के रोगियों को गुड़ न मिलाना चाहिए।

जो मनुष्य उपवास आरम्भ करके अनेक प्रकार के संदेह पैदा करता रहता है और डरा करता है, उसको उपवास से लाभ नहीं होता।

उपवास के दिनों में यदि रोगी का वजन तेजी के साथ कम होने लगे और उसकी शारीरिक दुर्बलता में वृद्धि हो जाय, साथ ही रोगी की मानसिक चिन्ता बढ़ती हुई दिखायी दे तो उसके उपवास को तुरन्त तोड़ने का प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसा न करने से संकट पैदा हो सकता है।

जिसने कभी उपवास नहीं किया, उसे पहले पहल लम्बा उपवास नहीं करना चाहिए और एक-दो बार छोटे उपवास करके लम्बा उपवास करना चाहिए।

जीभ का मैल और श्वास की दुर्गन्ध शरीर के भीतर के विकारों को समझने में कभी-कभी धोखा देती है। साधारण नियम यह है कि जीभ के साफ हो जाने और श्वास में दुर्गन्ध न रहने से शरीर के शुद्ध हो जाने का प्रमाण मिलता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता। विजातीय द्रव्य के न रहने पर भी कभी-कभी ये दोनों बातें बनी रहती हैं। भूख भी नहीं लगती।

इस दशा में शरीर की दुर्बलता को देखकर उपवास को छोड़ देना चाहिए और आवश्यकता मालूम हो तो कुछ दिनों के बाद फिर उपवास करना चाहिए।

जिस मनुष्य की पाचन-क्रिया निर्बल पड़ जाय और उसके दूसरे लक्षण उसके शरीर में संचित विजातीय द्रव्य की सूचना दें तो उपवास आरम्भ करने के पहले उसके भोजन में प्रोटीन देने वाली चीजों को रोक दिया जाय और उसे फलों, शाकों और हरी तरकारियों के भोजन पर कुछ दिनों तक रखा जाय। इससे उस मनुष्य को प्राकृतिक लवण प्राप्त होंगे और उनसे उसके शरीर का विजातीय द्रव्य बाहर निकलने लगेगा। यदि ये चीजें कच्ची उसे खिलायी जायँ अर्थात् बिना आग पर पकाये हुए, तो अधिक लाभ हो सकता है।

शरीर में विजातीय द्रव्य के बढ़ जाने पर और कभी-कभी कुछ देर में भोजन मिलने पर शरीर के भीतरी अवयव विजातीय द्रव्य के भार को निकालने का कार्य आरम्भ कर देते हैं और उसके फलस्वरूप सिर में दर्द, जुकाम और हरारत जैसे रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। वास्तव में इन रोगों के रूप में विकारों का निष्कासन आरम्भ होता है। परन्तु उसके बाद चाय पी लेने अथवा भोजन कर लेने से विकारों के निष्कासन का कार्य फिर रुक जाता है और जिन रोगों का उभार हुआ था, वे दब जाते हैं। ऐसे अवसरों पर लोग कहने लगते हैं कि भूख के कारण सिर में दर्द और बुखार हो गया था, चाय पी लेने अथवा खाना खा लेने से ठीक हो गया।

शरीर में विजातीय द्रव्य की अधिकता होने पर और उसके निकालने का अवसर न मिलने पर प्रकृति हठपूर्वक उसके निकालने का कार्य आरम्भ करती है और उसके फलस्वरूप दस्तों का जाना अथवा पेचिश का आना आरम्भ हो जाता है।

इस अधिकता के कारण ही मल निष्कासन का कार्य अतिसार के रूप में आरम्भ होता है। ऐसे मौकों पर तुरन्त खाना बन्द कर देना चाहिए और बिना किसी औषधि के मल-निष्कासन का कार्य होने देना चाहिए।

ऐसे अवसरों पर अगर कुछ खाने को न दिया जाय तो स्वाभाविक रूप से दस्त, पेचिश और अतिसार अपने आप रुक जायँगे। लेकिन लोग औषधियों के द्वारा इस मल-निष्कासन के कार्य को रोककर भविष्य में किसी भयानक रोक को आमंत्रित करते हैं।

कभी-कभी पेचिश और अतिसार कई-कई सप्ताह चलता है, परन्तु इससे घबराने का कोई कारण नहीं है। उसे खाना रोक देना चाहिए और ठण्ढा जल बराबर पीने को देना चाहिए। इस जल में नीबू अथवा किसी दूसरे खट्टे फल का रस मिला देने से मल की सफाई होने में सहायता मिलती है और रोगी शीघ्र सेहत हो जाता है।

शरीर के विषैले विजातीय द्रव्य को निकालने के सिवा फलों का रस शरीर को शक्ति देता है और उत्तेजना प्रदान करता है। उसमें विटामिन अधिक मात्रा में होते हैं।

उपवास के दिनों में जो फलों का रस दिया जाय, उसमें पानी मिला लेना अच्छा होता है। लेकिन उन दिनों में फलों का रस अधिक न दिया जाय, क्योंकि जो पाचन-क्रिया उपवास के दिनों में विजातीय द्रव्य के निकालने का काम करती है, उसको अपना यह कार्य बन्द करके फलों के रस के पचाने का कार्य विवश होकर आरम्भ कर देना पड़ेगा।

जिन लोगों की आँतों और आमाशय में चिकनी श्लेष्मा भरी रहती है, उनको उपवास काल में गरम पानी सहता हुआ पीना बहुत आवश्यक है।

उपवास के दिनों में बहुधा मुँह में गाढ़ी और लसदार लार की वृद्धि हो जाती है। इससे पता चलता है कि विकारों का निष्कासन तेजी के साथ हो रहा है।

जिन लोगों का यकृत बढ़ा हुआ होता है और उसमें विजातीय द्रव्य संचित रहता है तो इस प्रकार के यकृत से उपवास के दिनों में पित्त निकल-निकल कर आँतों में आ जाता है और वहाँ से लौट कर वह आमाशय में पहुँच जाता है, जिससे मिचली अधिक आती है और कै भी होती है। इस तरह की कै से लोग भयभीत हो उठते हैं।

लम्बे उपवास में कभी-कभी रोगी के शरीर से बदबू से भरा हुआ पसीना निकलता है। उससे यह जाहिर होता है कि विजातीय द्रव्य को निकालने में त्वचा तेजी के साथ काम कर रही है।

बदबूदार पसीना आने पर सारे बदन को गीले कपड़े से खूब रगड़ कर साफ करना चाहिए। प्रत्येक बार पसीना आने पर इस प्रकार सफाई करना जरूरी है। नहीं तो पसीना सूख कर, पसीना निकालने वाले छिद्रों के मुँह को बन्द कर देगा। ऐसा होने से त्वचा के मार्ग से जो विजातीय द्रव्य निकल रहा था, वह न निकल सकेगा।

स्वस्थ स्त्री-पुरुषों के बदबूदार पसीना को साफ करने के लिए गरम पानी में साबुन की जरूरत पड़ती है। यदि साबुन के स्थान पर खट्टे नीबू का प्रयोग किया जाय तो अधिक अच्छा हो सकता है।

यह विश्वास बिलकुल गलत है कि भोजन से मनुष्य को नयी शक्ति मिलती है। इसके बजाय यह कहना अधिक उचित होगा कि भोजन से शरीर में नये कोष तैयार होते हैं। परिश्रम करने से ये कोष नष्ट होते हैं और कोषों के नष्ट होने

पर भूख लगती है। भोजन कर लेने के बाद शरीर में फिर कोष उत्पन्न होने लगते हैं।

परन्तु केवल इन्हीं कोषों से नयी शक्ति नहीं मिलती। क्योंकि परिश्रम करने के बाद केवल भोजन से काम नहीं चलता और उस समय तक फिर परिश्रम करने की शक्ति नहीं उत्पन्न होती, जब तक मनुष्य पूरी तौर पर विश्राम नहीं कर लेता। विश्राम के लिए गहरी नींद लेना सब से अच्छा उपाय है।

उपवास के दिनों में वजन घटने का जो एक भूत मनुष्य के मस्तिष्क में मौजूद रहता है, उसे यहाँ एक दूसरे तरीके से स्पष्ट करना अच्छा रहेगा। जो लोग भोजन न मिलने के कारण मरे हैं, उनके शव की परीक्षा लेने के बाद जो परिणाम निकला है, उससे पता चलता है कि भोजन के अभाव में शरीर के किन अंगों का वजन प्रतिशत किस हिसाब से घटता है? इसके लिए उस परीक्षा के बाद नीचे लिखा हुआ लेखा दिया गया है—

चरबी	.....	...	९७ प्रतिशत
मांस-पेशियाँ	.....	...	३० ,,
जिगर	.....	...	६३ ,,
तिल्ली	.....	...	५६ ,,
रक्त	.....	...	१७ ,,

वजन घटने के इस लेखा में दो बातें समझने की हैं। एक तो यह कि शरीर के भीतर जो अंश हमारे लिए कम-से-कम उपयोगी है, वही अधिक घटा है और जिनकी उपयोगिता अधिक है, उसमें कमी कम से कम हुई है। अर्थात् जो रक्त शरीर में अधिक उपयोगी है, उसकी कमी १७ प्रतिशत से अधिक नहीं

हुई। एक और महत्व की बात यह है कि उपवास से और अन्नाभाव के कारण मौत से ज्ञानतन्तुओं में कोई कमी नहीं आती। यही कारण है कि तपस्वी अनशन करके शरीर को सुखा देते हैं। उनके ऐसा करने से मस्तिष्क में निर्बलता पैदा होने के स्थान पर शक्ति का स्रोत उमड़ता है।

शरीर के छोटे और बड़े सभी अंगों का संचालन मस्तिष्क करता है और उसके कार्यों का सम्पादन समस्त शरीर में फैले हुए नाड़ी-जाल के द्वारा होता है। उपवास से इस नाड़ी-जाल में अथवा मस्तिष्क में कोई कमी नहीं आती।

इस बात के मान लेने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि भोजन का जितना हिस्सा भली-भाँति परिपाक हो जाता है, उसी के पौष्टिक तत्व शक्ति के रूप में शरीर को प्राप्त होते हैं। उसके सिवा भोजन का जो हिस्सा परिपाक नहीं हो पाता और उसके बाद दूसरा भोजन पाचन के लिए भीतर पहुँच जाता है तो पहले का बचा हुआ और बिना पचा हुआ भोजन का भाग शरीर के भीतर रुककर सड़ने लगता है। यही बिना पचा हुआ भोजन सड़-सड़कर विष उत्पन्न करता है। उसके प्रभाव से और विजातीय द्रव्य के भार से पाचन क्रिया में सुस्ती उत्पन्न हो जाती है।

यहाँ पर समझने की बात यह है कि शरीर का लाभ भोजन की अधिक मात्रा पर निर्भर नहीं है। बल्कि जितना हिस्सा पचकर अपने पौष्टिक तत्व शरीर को दे देता है, उस पर निर्भर है।

इस निर्णय से जो लोग अधिक भोजन करने के पक्षपाती हैं, उनकी समझ में आ जाना चाहिए कि अधिक भोजन करने की अपेक्षा मिताहारी होने में शरीर का कल्याण अधिक है।

उपवास के दिनों के जो रहस्य हैं, उनका विस्तार बहुत अधिक है। उनमें अब अधिक जाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए अब यहाँ पर एक बात का और जिक्र करके मैं इस परिच्छेद को भी समाप्त कर देना चाहती हूँ।

उपवास का करीब-करीब सभी रोगों पर प्रभाव पड़ता है और पूर्ण रूप से वे सेहत किये जाते हैं। इसके साथ-साथ जीर्ण रोगों के सम्बन्ध में भी संक्षेप में कुछ समझ लेना चाहिए। डाक्टरों और दूसरे चिकित्सकों की राय में दमा, बवासीर, गठिया, एक्जिमा की तरह के अनेक रोग ऐसे हैं जो अच्छे नहीं होते। इस प्रकार के रोग साधारण तौर पर जीर्ण रोग कहलाते हैं।

यह मानी हुई बात है कि पुरानी प्रत्येक चिकित्सा में जीर्ण रोगों को असाध्य समझा जाता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में जिसका प्रमुख साधन उपवास है, किसी भी रोग को असाध्य नहीं समझा जाता। केवल रोगी की जीवन-शक्ति का शेष रहना आवश्यक होता है। यदि यह शक्ति बनी होती है तो कोई भी रोग उपवास के द्वारा सेहत हो सकता है, उपवास का यह एक अमर सिद्धान्त है। उस पर विश्वास करने की आवश्यकता है।